ISSN : 2319-2178 (P)
ISSN : 2582-6603 (O)

संरक्षक परिषद

श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गिरीश्वर मिश्र
प्रो. अशोक सिंह
प्रो. हितेंद्र मिश्र
प्रो. अश्विनीकुमार शुक्ल

संपादक परिषद

डॉ. बृजेंद्र अग्निहोत्री
(संपादक)
श्री पंकज पाण्डेय
(उप-संपादक)
श्रीमती शालिनी सिंह
(उप-संपादक)
डॉ. चुकी भूटिया
(उप-संपादक)

परामर्श-विशेषज्ञ परिषद

डॉ. दमयंती सैनी
डॉ. दीपक त्रिपाठी
श्री मनस्वी तिवारी
श्री जयकेश पाण्डेय
श्री महेशचंद्र त्रिपाठी
श्री मृत्यंजय पाण्डेय
श्री जयेन्द्र वर्मा

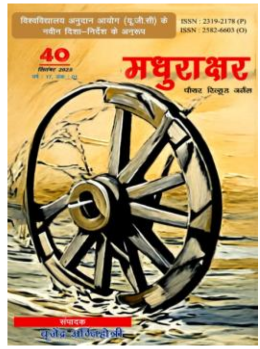

आवरण : **बंशीलाल परमार**

संपादक
बृजेंद्र अग्निहोत्री

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण का उपक्रम

सितंबर, 2025
वर्ष : 17, अंक : 01, पूर्णांक : 40

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

सहयोग
यह प्रति : 300 रुपये

व्यक्तियों के लिए
वार्षिक : 500 रुपये
त्रैवार्षिक : 1500 रुपये
आजीवन : 5000 रुपये

संस्थाओं के लिए
वार्षिक : 1000 रुपये
त्रैवार्षिक : 3000 रुपये
आजीवन : 10000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)
एक अंक : 12 $
वार्षिक : 48 $
आजीवन : 1000 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में खाता क्रमांक– **10946443013** (IFS Code- SBIN0000076, MICR Code - 212002002) या 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code- 212002004) में करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी
बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण का उपक्रम

मधुराक्षर

सितंबर, 2025

संपादक
बृजेंद्र अग्निहोत्री

कार्यालय
4, टीचर्स कॉलोनी, हरिहरगंज
फतेहपुर (उ.प्र.) 212 601

E-Mail :
madhurakshar@gmail.com

Visit us :
www.madhurakshar.in
www.madhurakshar.com

www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

अनुक्रम

संपादकीय

अपनी बात 05

कलम को नमन

नयी बीवीः **प्रेमचंद** 07

अशोक के फूलः **हजारी प्रसाद द्विवेदी** 80

दूर कटा मैं कवि जनता काः **केदारनाथ सिंह** 122

कथा–साहित्य

मैं और ताजमहलः **देवी नागरानी** 23

लड़कियां डरती नहीं हैंः **नीरजा हेमेंद्र** 30

महाप्रयाणः **महेश शर्मा** 39

फोटोग्राफरः **संदीप शर्मा** 52

आखिरी पड़ावः **महेश कुमार केशरी** 60

छलात्कारः **विकास कुमार** 65

चौखटः **रामेश्वर महादेव वाढेकर** 73

कथेतर गद्य

वर्षा में भीगता हिंदी साहित्यः **अशोक पटेल 'आशु'** 89

विज्ञान कथा–साहित्य में पर्यावरण चेतनाः
मोरे औदुंबर बबनराव 92

बिहार में गजल लेखनः **जियाउर रहमान जाफरी** 95

नई शिक्षा नीतिः कार्यान्वयन की चुनौतियांः **शैलेश शुक्ला** 102

पर्यटन

छत्तीसगढ़ का धार्मिक आध्यात्मिक स्थलः राजिम
प्रिया देवांगन 'प्रियू' 110

मनाली के एकांश का सौंदर्यः **अनीता रश्मि** 114

काव्य सुरसरि

शबनम आलम 124

धर्मपाल महेंद्र जैन 127

मनीष कुमार वर्मा 131

शैलेंद्र चौहान 134

केशव शरण 142

नवीन माथुर पंचोली 145

प्रवीण पारीक 'अंशु' 148

कैलाश मनहर 151

सुधा राजे 153

कृति–चर्चा

चित्रलेखा (उपन्यास): भगवती चरण वर्मा

सुनीता जाजोदिया 155

प्रेम कहानी (उपन्यास): ममता कालिया

कृष्ण कुमार पासवान 158

कपास (कहानी–संग्रह): कुबेर दत्त कौशिक

सोनल मंजू श्री ओमर 162

खूबसूरत मोड़ (कहानी–संग्रह): रामनगीना मौर्य

कांति शुक्ला 165

हिंदी भाषा और तकनीक: शैलेश शुक्ला

दीनदयाल 168

हरेराम समीप: चयनित गजलें

जियाउर रहमान जाफरी 172

नौ रुपये बीस पैसे के लिए (कविताएं): शैलेंद्र चौहान

सुरेंद्र प्रजापति 176

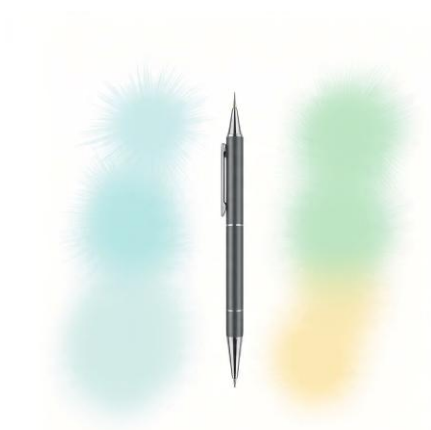

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

संपादकीय

अपनी बात

जब हम शब्दों की अनंत लोक-यात्रा में प्रवेश करते हैं, तब केवल अक्षरों का संयोग नहीं होता, बल्कि एक ऐसा दिव्य संगम घटित होता है जहाँ हमारे मन के अनगिनत भाव, कहानियां, पीड़ा, आशाएं और अनुभव आपस में मिलकर एक समृद्ध साहित्यिक सृष्टि का रूप ले लेते हैं। शब्द केवल ध्वनियां या प्रतीक मात्र नहीं होते, वे हमारी आत्मा की अभिव्यक्ति, हमारी सांस्कृतिक विरासत के संवाहक, और हमारे सामाजिक अनुभवों के दर्पण हैं। 'मधुराक्षर' पत्रिका इसी बहुमूल्य संगम की समृद्ध परंपरा को न केवल सहेजने, बल्कि नई संवेदनाओं, विचारों और दृष्टिकोणों के साथ आगे बढ़ाने का प्रयास करती है। यह पत्रिका एक ऐसा सृजनात्मक मंच है, जहाँ हर कविता, हर कथा, हर निबंध अपने आप में एक संपूर्ण विश्व है- एक ऐसा विश्व जो पाठक को आत्म-निरीक्षण और सामाजिक चिंतन दोनों की ओर प्रेरित करता है, जिससे न केवल बौद्धिक संतुष्टि मिलती है, बल्कि हृदय और मन की गहराई तक स्पर्श भी होता है।

इस अंक में प्रस्तुत रचनाएं इस सत्य की सजीव गवाही देती हैं कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि संवेदनशील मनुष्य की समाज के हर कोने तक पहुंचने वाली दर्पण जैसी आवाज है। जैसा कि प्रेमचंद की अमर कहानी 'नई बीवी' में हम देखते हैं, वहाँ एक नवजीवन के संघर्ष और संघर्षशील मनोभावों की मार्मिक झलक मिलती है। यह कहानी न केवल व्यक्तिगत जीवन की झिझक और चुनौतियों को बयां करती है, बल्कि समाज में व्याप्त परंपराओं, पूर्वाग्रहों और बदलाव की अनिवार्यता को भी उजागर करती है। ठीक उसी प्रकार, देवी नागरानी की 'मैं और ताजमहल' जातिगत बंधनों और प्रेम के अतल जज्बातों की विस्मयकारी दास्तान सुनाती है, जो सामाजिक जड़ता को चुनौती देती है और मानवीय संवेदनाओं को मुखर बनाती है। यह रचना हमें याद दिलाती है कि प्रेम के रास्ते में कितनी दीवारें होती हैं, लेकिन वे दीवारें टूटनी भी जरूरी हैं ताकि मानवता की विजय हो सके। हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'अशोक के फूल' के माध्यम से जब हम भारतीय इतिहास और संस्कृति के जड़ों की गहराई में उतरते हैं,

तब समझ आता है कि ये सांस्कृतिक विरासतें हमारी पहचान और प्रेरणा का स्रोत हैं। यह निबंध केवल पुष्पों के सौंदर्य का चित्रण नहीं, बल्कि संघर्ष और दृढ़ता का प्रतीक है, जो हमें हमारे अतीत से जोड़ती है। अशोक के फूल जैसे प्रतीक हमारे भीतर एक मजबूत सांस्कृतिक आत्म-बोध का संचार करते हैं, जो आज के समय में भी हमें अपने मूल्यों और इतिहास से जुड़े रहने का संदेश देते हैं। कविता के जरिए केदारनाथ अग्रवाल की उद्घोषणा 'दूर कटा कवि मैं जनता का' हमें स्मरण कराती है कि प्रत्येक सृजनकर्ता की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह समाज के कष्टों को संवेदना के साथ अनुभव करे और उनकी आवाज बने। कवि न केवल शब्दों का सर्जक होता है, बल्कि वह एक सामाजिक प्रहरी भी होता है, जो अपने सृजन के माध्यम से जनता की पीड़ा, उनके सपनों और उनकी अस्मिता को सामने लाता है। इसी तरह नीरजा हेमेन्द्र की कहानी 'लड़कियां डरती नहीं हैं' में सामाजिक संरचनाओं के भीतर छिपी उन लड़कियों की निर्भीकता और साहस की उद्घोषणा है, जो एक नई उम्मीद का संचार करती है। यह कहानी न केवल स्त्री स्वतंत्रता की महत्ता को रेखांकित करती है, बल्कि सामाजिक बदलाव के प्रति युवा पीढ़ी के जज्बे और आत्मविश्वास को भी दर्शाती है।

'मधुराक्षर' के इस अंक में समाहित कविताएं, कहानियां और निबंध न केवल सामाजिक विकृतियों पर तीखा प्रहार करते हैं, बल्कि प्रकृति की सौंदर्यशाली छटा का भी मनमोहक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति और मानव जीवन की यह अनुपम कड़ी हमें यह स्मरण कराती है कि साहित्य केवल शब्दों का खेल नहीं, अपितु जीवन का सजीव दर्पण है, जो हमें स्वयं से और समाज से जोड़े रखता है। हमारा प्रयास है कि यह अंक हमें अपने आस-पास के परिवेश को ध्यान से देखने, उसकी सुंदरता, उसकी विडंबनाओं को समझने, और एक संवेदनशील दृष्टि से उसका मूल्यांकन करने के लिए विवश करे।

प्रिय पाठकों, जब आप इस अंक को पढ़ेंगे, तो केवल शब्दों के रससंचार में लिप्त न रहें, बल्कि उन भावनाओं को भी आत्मसात करें जो प्रत्येक रचना के अंतर्निहित हैं। यह अंक हमारे हृदयों की वह अविरल आवाज है, जो सुनने को तरसती है और समझने को आतुर है। यह साहित्यिक यात्रा केवल लेखकों की नहीं, बल्कि आपके संवेदनशील हृदयों की भी है, जो इसे जीवंत बनाए रखती है। हमें पूर्ण विश्वास है कि 'मधुराक्षर' के इस अंक से आपको मिलेगा वह प्रेम, सहानुभूति और प्रेरणा, जो हमारे जीवन को अधिक संवेदनशील, सहिष्णु एवं

सुंदर बना सके। क्योंकि साहित्य का वास्तविक सौंदर्य तभी प्रकट होता है जब वह हमारे हृदयों को छू सके, हमारे मन को जागृत कर सके, और हमें एक बेहतर इंसान बनने के पथ पर अग्रसर कर सके। यह केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि एक क्रांतिकारी शक्ति है जो समाज को सुधारने और उन्नति के पथ पर ले जाने का सामर्थ्य रखती है।

यह यात्रा आपके स्नेह, समर्थन और सहभागिता के बिना अधूरी है। कृपया अपने अनुभव और सुझाव हमारे साथ साझा करें, ताकि हम मिलकर इस साहित्यिक संसार को और अधिक समृद्ध, जीवंत और प्रेरणादायक बना सकें। आपकी प्रतिक्रिया हमारे लिए न केवल मार्गदर्शक है, बल्कि यह हमारी रचनात्मक ऊर्जा का स्रोत भी है। आइए, मिलकर इस सृजनात्मक परंपरा को और ऊँचाइयों तक पहुंचाएं, ताकि 'मधुराक्षर' न केवल शब्दों की पत्रिका रहे, बल्कि एक संवेदनशील और जागरूक समाज की आवाज भी बन सके।

—बृजेंद्र अग्निहोत्री

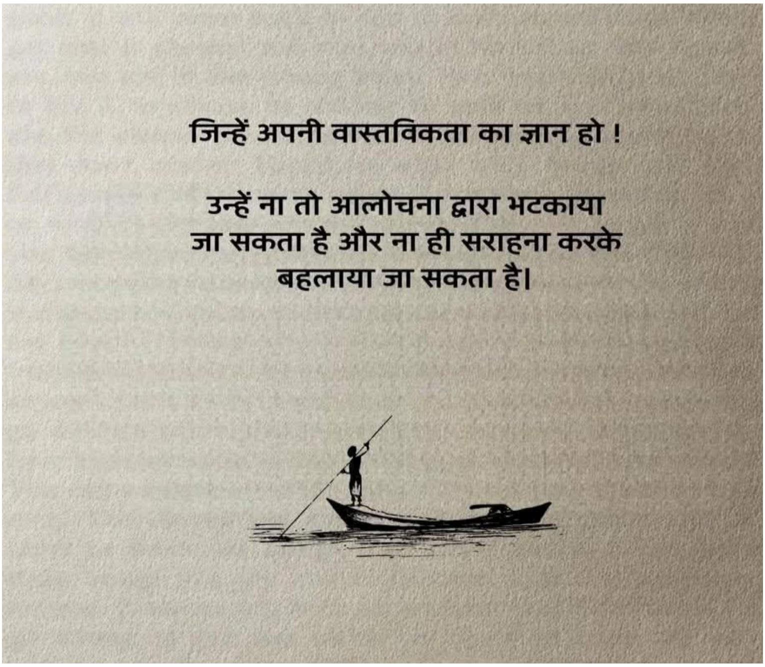

कलम को नमन

प्रेमचंद

प्रेमचंद (जुलाई 31, 1880 – अक्टूबर 8, 1936) हिंदी साहित्य के युगचेतक कथाकार थे, जिन्हें 'उपन्यास सम्राट' कहा जाता है। उनका जन्म वाराणसी के पास लमही गाँव में हुआ था। असली नाम धनपत राय था, परंतु साहित्य जगत में वे प्रेमचंद नाम से विख्यात हुए। जीवन संघर्षों से भरा रहा- अभाव, पारिवारिक जिम्मेदारियां और अस्थिर नौकरियां, फिर भी उन्होंने लेखन को समाजसेवा का माध्यम बनाया। प्रेमचंद की विचारधारा मूलतः यथार्थवादी, मानवीय और सुधारवादी थी। उन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का औजार माना। उनकी रचनाएं भारतीय ग्रामीण जीवन, किसान, दलित, मजदूर और स्त्रियों की पीड़ा की सजीव अभिव्यक्ति हैं। वे सामाजिक कुरीतियों जैसे दहेज, बाल विवाह, जातिवाद और शोषण के विरुद्ध लेखनी उठाते हैं। उनकी भाषा सहज, सरल और प्रभावशाली थी, जिसमें उर्दू, फारसी और लोकभाषा का सम्मिलन मिलता है। गोदान, गबन, रंगभूमि, ईदगाह और कफन जैसी रचनाएं आज भी सामाजिक यथार्थ का आईना हैं। उन्होंने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रवाद और मानवतावाद की भावना को जन-जन तक पहुँचाया। प्रेमचंद न केवल हिंदी साहित्य के स्तंभ हैं, बल्कि भारतीय समाज की अंतरात्मा के सच्चे प्रवक्ता भी हैं।

कहानी

नयी बीवी

• प्रेमचंद

पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात जब लाला डंगामल ने पुनः विवाह किया, तो उनके जीवन में जैसे एक नई बहार आ गई। उन्हें प्रतीत हुआ मानो फिर से यौवन लौट आया हो। नवविवाहिता पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए वे विविध प्रकार के प्रयत्न करने लगे- कभी श्रृंगार में, तो कभी मधुर वचनों में लिपटी चतुराई में। परंतु नवोढ़ा पत्नी उनके इन प्रयासों के प्रति उदासीन सी रहीय उसके व्यवहार में एक अनकही दूरी, एक सूक्ष्म विरक्ति झलकती थी।

हमारा जिस्म पुराना है लेकिन इसमें हमेशा नया खून दौड़ता रहता है। इस नए खून पर जिंदगी कायम है। दुनिया के कदीम निजाम में ये नयापन उसके एक एक जर्रे में, एक-एक टहनी में, एक-एक कतरे में, तार में छुपे हुए नगमें की तरह गूँजता रहता है और ये सौ साल की बुढ़िया आज भी नई दुल्हन बनी हुई है।

जबसे लाला डंगामल ने नई शादी की है उनकी जवानी अज़ सर-ए-नौ ऊद कर आई है जब पहली बीवी ब-कैद-ए-हयात थी वो बहुत कम घर रहते थे। सुबह से दस ग्यारह बजे तक तो पूजापाठ ही करते रहते थे। फिर खाना खाकर दुकान चले जाते। वहां से एक बजे रात को लौटते और थके-माँदे सो जाते। अगर लीला कभी कहती कि जरा और सवेरे आ जाया करो तो बिगड़ जाते, 'तुम्हारे लिए क्या दुकान बंद कर दूं या रोजगार छोड़ दूं। ये वो जमाना नहीं है कि एक लोटा जल चढ़ाकर लक्ष्मी को खुश कर लिया जाये। आजकल लक्ष्मी की चौखट पर माथा रगड़ना पड़ता है तब भी उनका मुँह सीधा नहीं होता।' लीला बेचारी खामोश हो जाती।

अभी छः महीने की बात है। लीला को जोर का बुखार था लाला जी दुकान को चलने लगे तो लीला ने डरते-डरते कहा, 'देखो मेरी तबीयत अच्छी नहीं है जरा सवेरे आ जाना।'

लाला जी ने पगड़ी उतारकर खूँटी पर लटका दी और बोले, 'अगर मेरे बैठे रहने से तुम्हारा जी अच्छा हो जाये तो मैं दुकान न जाऊँगा।'

लीला रंजीदा हो कर बोली, 'मैं ये कब कहती हूँ कि तुम दुकान न जाओ मैं तो जरा सवेरे आ जाने को कहती हूँ।'

'तो क्या मैं दुकान पर बैठा मौज करता हूँ?'

लीला कुछ न बोली। शौहर की ये बे-एतिनाई उसके लिए कोई नई बात न थी। इधर कई दिन से इसका दिल-दोज तजुर्बा हो रहा था कि इस घर में उसकी कदर नहीं है, अगर उसकी जवानी ढल चुकी थी तो उसका क्या कसूर था, किसकी जवानी हमेशा रहती है। लाजिम तो ये था कि पचपन साल की रिफाकत अब एक गहरे रुहानी ताल्लुक में तब्दील हो जाती जो जाहिर से बेनयाज रहती है। जो ऐब को भी हुस्न देखने लगती है, जो पके फल की तरह ज्यादा शीरीं ज्यादा खुशनुमा हो जाती है। लेकिन लाला जी का ताजिर दिल हर एक चीज को तिजारत के तराजू पर तौलता था। बूढ़ी गाय जब न दूध दे सकती हो न बच्चे तो उसके लिए गउशाला से बेहतर कोई जगह नहीं। उनके खयाल में लीला के लिए बस इतना ही काफी था कि वो घर की मालकिन बनी रहे, आराम से खाए पहने पड़ी रहे। उसे इख्तियार है चाहे जितने जेवर बनवाए, चाहे जितनी खैरात और पूजा करे रोजे रखे, सिर्फ उनसे दूर रहे। फितरत-ए-इन्सानी की नैरंगियों का एक करिश्मा ये था कि लाला जी जिस दिलजोई और हज से लीला को महरूम रखना चाहते थे। खुद उसी के लिए अबलहाना सरगर्मी से मुतलाशी रहते थे। लीला चालीस की होकर बूढ़ी समझ ली गई थी मगर वो पैंतालीस साल के होकर अभी जवान थे। जवानी के वलवलों और मसर्रतों से बेकरार लीला से अब उन्हें एक तरह की कराहियत होती थी और वो गरीब जब अपनी खामियों के हसरतनाक एहसास की वजह से फित्री बे रहमियों के अजाले के लिए रंग-ओ-रोगन की आड़ लेती तो वो उस की बुअलहोसी से और भी मुतनफ्फिर हो जाते, 'चे खुश। सात लड़कों की तो माँ हो गईं, बाल खिचड़ी हो गए चेहरा धुले हुए फलालैन की तरह पुर शिकन हो गया। मगर आपको अभी महावर और सींदूर मेहंदी और उबटन की हवस बाकी है, औरतों की भी क्या फितरत है। न जाने क्यों आराइश पर इस कदर जान देती हैं। पूछो अब तुम्हें और क्या चाहिए? क्यों नहीं दिल को समझा लेतीं कि जवानी रुख्सत हो गई और उन तदबीरों से उसे वापस नहीं बुलाया जा सकता।' लेकिन वो खुद जवानी का ख्वाब देखते रहते थे। तबीयत जवानी से सेर न होती जाड़ों में कुश्तों और माजूनों का इस्तिमाल करते रहते थे। हफ्ते में दो बार

खिजाब लगाते और किसी डाक्टर से बंदर के गदूदों के इस्तिमाल से मुताल्लिक खत–ओ–किताबत कर रहे थे।

लीला ने उन्हें शश–ओ–पंज की हालत में खड़ा देखकर मायूसाना अंदाज से कहा, 'कुछ बतला सकते हो कै बजे आओगे?'

लाला जी ने मुलायम लहजे में कहा, 'तुम्हारी तबीय'त आज कैसी है?'

लीला क्या जवाब दे? अगर कहती है बहुत खराब है तो शायद ये हजरत यहीं बैठ जाएं और उसे जली कटी सुनाकर अपने दिल का बुखार निकालें। अगर कहती है अच्छी हूँ तो बेफिक्र होकर दो बजे रात की खबर लाएं। डरते डरते बोली, 'अब तक तो अच्छी थी लेकिन अब कुछ भारी हो रही है। लेकिन तुम जाओ दुकान पर लोग तुम्हारे मुंतजिर होंगे। मगर ईश्वर के लिए एक दो न बजा देना, लड़के सो जाते हैं, मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता, तबीय'त घबराती है।'

सेठ जी ने लहजे में मुहब्बत की चाशनी देकर कहा, 'बारह बजे तक आ जाऊँगा, जरूर।'

लीला का चेहरा उतर गया, 'दस बजे तक नहीं आ सकते?'

'साढ़े ग्यारह बजे से पहले किसी तरह नहीं।'

'साढ़े दस भी नहीं।'

'अच्छा ग्यारह बजे।'

ग्यारह पर मुसालहत हो गई। लाला जी वाअदा करके चले गए, लेकिन शाम को एक दोस्त ने मुजरा सुनने की दावत दी। अब बिचारे इस दावत को कैसे रद्द करते जब एक आदमी आपको खातिर से बुलाता है तो ये कहाँ की इन्सानियत है कि आप उसकी दावत नामंजूर कर दें। वो आपसे कुछ मांगता नहीं, आपसे किसी तरह की रिआयत का ख्वास्तगार नहीं, महज दोस्ताना बेतकल्लुफी से आपको अपनी बज्म में शिरकत की दावत देता है, आप पर उसकी दावत कबूल करना जरूरी हो जाता है। घर के जंजाल से किसे फुर्सत है एक न एक काम तो रोज लगा ही रहता है। कभी कोई बीमार है, कभी मेहमान आए हैं, कभी पूजा है, कभी कुछ कभी कुछ। अगर आदमी ये सोचे कि घर से बेफिक्र हो कर जाऐंगे तो उसे सारे दोस्ताना मरासिम मुनकते कर लेने पड़ेंगे। उसे शायद ही घर से कभी फरागत नसीब हो। लाला जी मुजरा सुनने चले गए तो दो बजे लौटे। आते ही अपने कमरे की घड़ी की सूईयां पीछे कर दीं। लेकिन एक घंटा से ज्यादा की गुंजाइश किसी तरह न निकाल सके, दो को एक तो कह सकते हैं, घड़ी की तेजी के सर इल्जाम रखा जा सकता है लेकिन दो को बारह

नहीं कह सकते। चुपके से आकर नौकर को जगाया, खाना खाकर आए थे अपने कमरे में जा कर लेट रहे। लीला उनकी राह देखती, हर लम्हा दर्द और बेचैनी की बढ़ती हुई शिद्दत का एहसास करती न जाने कब सो गई थी। उसको जगाना सोए फित्ना को जगाना था।

गरीब लीला इस बीमारी से जांबर न हो सकी। लाला जी को उसकी वफात का बेहद रुहानी सदमा हुआ। दोस्तों ने ताजियत के तार भेजे कई दिन ताजियत करने वालों का ताँता बंधा रहा। एक रोजाना अखबार ने मरने वाली की कसीदा ख्वानी करते हुए उसकी दिमागी और अखलाकी खूबियों की मुबालगा आमेज तस्वीर खींची। लाला जी ने उन सब हमदर्दों का दिली शुक्रिया अदा किया और उनके खुलूस–ओ–वफादारी का इजहार जन्नत नसीब लीला के नाम से लड़कियों के लिए पाँच वजीफे कायम करने की सूरत में नमूदार हुआ। वो नहीं मरीं साहिब मैं मर गया। जिंदगी की शम्मा–ए–हिदायत गुल हो गई। अब तो जीना और रोना है, मैं तो एक हकीर इन्सान था। न जाने किस कार–ए–खैर के सिले में मुझे ये नेअ’मत बारगाह–ए–एजदी से अता हुई थी। मैं तो उसकी परस्तिश करने के काबिल भी न था... वगैरा।

छह महीने की उजलत और नफ्सकुशी के बाद लाला डंगामल ने दोस्तों के इसरार से दूसरी शादी कर ली। आखिर गरीब क्या करते। जिंदगी में एक रफीक की जरूरत तो तब ही होती है, जब पांव में खड़े होने की ताकत नहीं रहती।

जब से नई बीवी आई है। लाला जी की जिंदगी में हैरत–अंगेज इन्किलाब हो गया है। दुकान से अब उन्हें इस कदर इन्हिमाक नहीं है। मुतवातिर हफ्तों न जाने से भी उनके कारोबार में कोई हर्ज वाके नहीं होता। जिंदगी से लुत्फ अंदोज होने की सलाहियत जो उनमें रोज बरोज मुज्महिल होती जाती थी। अब ये तरश्शा पाकर फिर सरसब्ज हो गई है, उस में नई–नई कोंपलें फूटने लगी हैं। मोटर नया आ गया है, कमरे नए फर्नीचर से आरास्ता कर दिए गए हैं, नौकरों की तादाद में माकूल इजाफा हो गया है। रेडियो भी लगा दिया गया है। लाला जी की बूढ़ी जवानी जवानों से भी ज्यादा पुर जोश और वलवला अंगेज हो रही है। उसी तरह जैसे बिजली की रोशनी चांद की रोशनी से ज्यादा शफ्फाफ और नजरफरेब होती है, लाला जी को उनके अहबाब उनकी इस जवान तबई पर मुबारकबाद देते हैं तो वो तफाखुर के अंदाज से कहते हैं, ‘भई हम तो हमेशा जवान रहे और हमेशा जवान रहेंगे। बुढ़ापा मेरे पास आए तो उसके मुँह पर स्याही लगाकर गधे पर उल्टा सवार करके शहर–बदर कर दूं ,जवानी और

बुढ़ापे को लोग न जाने उम्र से क्यों मंसूब करते हैं। जवानी का उम्र से इतना ही ताल्लुक है जितना मजहब का अखलाक से, रुपये का ईमानदारी से, हुस्न का आराइश से, आजकल के जवानों को आप जवान कहते हैं, अरे साहिब में उनकी एक हजार जवानियों को अपनी जवानी के एक घंटा से न तब्दील करूँ। मालूम होता है जिंदगी में कोई दिलचस्पी ही नहीं, कोई शौक ही नहीं, जिंदगी क्या है गले में पड़ा हुआ ढोल है।' यही अलफाज वो कुछ जरूरी तर्मीम के बाद आशा देवी के लौह-ए-दिल पर नक्श करते रहते हैं। इससे हमेशा सिनेमा, थिएटर, सैर-ए-दरिया के लिए इसरार करते हैं। लेकिन आशा न जाने क्यों इन दिलचस्पियों से जरा भी मुतास्सिर नहीं, वो जाती तो है मगर बहुत इसरार के बाद। एक दिन लाला जी ने आकर कहा, 'चलो आज बजरे पर दरिया के सैर कर आएं।'

बारिश के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था। अब्र की कतारें बैन-उल-अकवामी फौजों की सी रंग बिरंग वर्दियां पहने आसमान पर कवाइद कर रही थीं, सड़क पर लोग मलार और बारह मासे गाते चले जा रहे थे। बागों में झूले पड़ गए थे। आशा ने बेदिली से कहा, 'मेरा तो जी नहीं चाहता।'

लाला जी ने तादीब आमेज इसरार से कहा, 'तुम्हारी कैसी तबीयत है जो सैर-ओ-तफरीह की जानिब माइल नहीं होती।'

'आप जाएं, मुझे और कई काम करने हैं।'

'काम करने को ईश्वर ने आदमी दे दिये हैं। तुम्हें काम करने की क्या जरूरत है?'

'महराज अच्छा सालन नहीं पकाता, आप खाने बैठेंगे तो यूँ ही उठ जाऐंगे।' आशा अपनी फुर्सत का बेशतर हिस्सा लाला जी के लिए अन्वाअ इक्साम के खाने पकाने में सर्फ करती थी, किसी से सुन रखा था कि एक खास उम्र के बाद मर्दों की जिंदगी की खास दिलचस्पी लज्जत-ए-जबान रह जाती है।

लाला जी के दिल की कली खिल गई। आशा को उनसे किस कद्र मोहब्बत है कि वो सैर को उनकी खिदमत पर कुर्बान कर रही है। एक लीला थी कि कहीं जाऊं पीछे चलने को तैयार, पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। बहाने करने पड़ते थे, ख्वाह-मखाह सर पर सवार हो जाती थी और सारा मजा किरकिरा कर देती थी। बोले, 'तुम्हारी भी अजीब तबीयत है अगर एक दिन सालन बेमजा ही रहा तो ऐसा क्या तूफान आ जाएगा, तुम इस तरह मेरे रईसाना चोंचलों का लिहाज करती रहोगी तो मुझे बिल्कुल आरामतलब बना दोगी। अगर तुम न चलोगी तो मैं भी न जाऊँगा।'

आशा ने जैसे गले से फंदा छुड़ाते हुए कहा, 'आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमाकर मेरा मिजाज बिगाड़े देते हैं। ये आदत पड़ जाएगी तो घर के धंदे कौन करेगा?'

लाला जी ने फय्याजाना लहजे में कहा, 'मुझे घर के धंदों की जर्रा बराबर पर्वा नहीं है, बाल की नोक बराबर भी नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा मिजाज बिगड़े और तुम इस घर की चक्की से दूर हो और मुझे बार-बार 'आप' क्यों कहती हो? मैं चाहता हूँ तुम मुझे 'तुम' कहो। मुहब्बत की गालियां दो, गुस्से की सलवातें सुनाओ। लेकिन तुम मुझे आप कह कर जैसे देवता के सिंघासन पर बिठा देती हो, मैं अपने घर में देवता नहीं शरीर छोकरा बनकर रहना चाहता हूँ।'

आशा ने मुस्कुराने की कोशिश करके कहा, 'ए नौज, भला मैं आपको 'तुम' कहूँगी। तुम बराबर वालों को कहा जाता है या बड़ों को?'

मुनीम जी ने एक लाख के घाटे की पुरमलाल खबर सुनाई होती तब भी लाला जी को शायद इतना सदमा न होता जितना कि आशा के इन भोले-भोले अलफाज से हुआ, उनका सारा जोश सारा वलवला ठंडा पड़ गया जैसे बर्फ की तरह मुंजमिद हो गया। सर पर बाकी रखी हुई रंगीन फूलदार टोपी गले में पड़ी हुई जोगिये रंग की रेशमी चादर, वो तनजेब का बेलदार कुरता जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे। ये सारा ठाट जैसे मजहकाखेज मालूम होने लगा। जैसे सारा नशा किसी मंत्र से उतर गया हो। दिल-शिकस्ता होकर बोले, 'तो तुम्हें चलना है या नहीं?'

'मेरा जी नहीं चाहता।'

'तो मैं भी न जाऊं?'

'मैं आपको कब मना करती हूँ।'

'फिर आप, कहा।'

आशा ने जैसे अंदर से जोर लगाकर कहा, 'तुम' और उसका चेहरा शर्म से सुर्ख हो गया।

'हाँ इसी तरह तुम कहा करो। तो तुम नहीं चल रही हो? अगर मैं कहूं कि तुम्हें चलना पड़ेगा। तब?'

'तब चलूंगी, आपके हुक्म की पाबंदी मेरा फर्ज है।'

लाला जी हुक्म न दे सके, फर्ज और हुक्म जैसे लफ्ज से उनके कानों में खराश सी होने लगी खिसयाने हो कर बाहर चले। उस वक्त आशा को उन पर रहम आगया। बोली, 'तो कब तक लौटोगे?'

'मैं नहीं जा रहा हूँ।'

'अच्छा तो मैं भी चलती हूँ।'

जिस तरह कोई जिद्दी लड़का रोने के बाद अपनी मत्लूबा चीज पाकर उसे पैरों से ठुकरा देता है उसी तरह लाला जी ने रोना मुँह बनाकर कहा, 'तुम्हारा जी नहीं चाहता तो न चलो। मैं मजबूर नहीं करता।'

'आप... नहीं तुम बुरा मान जाओगे।'

आशा सैर करने गई लेकिन उमंग से नहीं, जो मामूली साड़ी पहने हुए थी, वही पहने चल खड़ी हुई। न कोई नफीस साड़ी न कोई मुरस्सा जेवर, न कोई सिंगार जैसे बेवा हो। ऐसी ही बातों से लाला जी दिल में झुँझला उठते थे। शादी की थी जिंदगी का लुत्फ उठाने के लिए, झिलमिलाते हुए चिराग में तेल डालकर उसे रोशन करने लिए, अगर चिराग की रोशनी तेज न हुई तो तेल डालने से क्या फायदा? न जाने उसकी तबीयत क्यों इस कदर खुश्क और अफ्सुर्दा है, जैसे कोई ऊसर का दरख्त हो कि कितना ही पानी डालो उसमें हरी पत्तियों के दर्शन ही नहीं होते, जड़ाऊं जेवरों के भरे हुए संदूक रखे हैं, कहाँ-कहाँ से मंगवाए, दिल्ली से, कलकत्ते से, फ्रांस से, कैसी कैसी बेशकीमत साड़ियां रखी हुई हैं, एक नहीं सैंकड़ों मगर संदूक में कीड़ों की खुराक बनने के लिए, गरीब खानदान की लड़योंकि में यही ऐब होता है, उनकी निगाह हमेशा तंग रहती है, न खा सकें न पहन सकें, न दे सकें, उन्हें तो खजाना भी मिल जाये तो यही सोचती रहेंगी कि भला उसे खर्च कैसे करें।

दरिया की सैर तो हुई मगर कुछ लुत्फ न आया।

कई माह तक आशा की तबीयत को उभारने की नाकाम कोशिश कर के लाला जी ने समझ लिया कि ये मुहर्रम की पैदाइश है। लेकिन फिर भी बराबर मश्क जारी रखी। इस व्यपार में एक खतीर रकम सिर्फ करने के बाद वो इस से ज्यादा से ज्यादा नफा उठाने के ताजिराना तकाजे को कैसे नजरअंदाज करते, दिलचस्पी की नई-नई सूरतें पैदा की जातीं, ग्रामोफोन अगर बिगड़ गया है, गाता नहीं। या आवाज साफ नहीं निकलता तो उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। उसे उठाकर रख देना तो हिमाकत है।

उधर बूढ़ा महराज बीमार होकर चला गया था और उसकी जगह उसका सोलह-सत्रह साल का लड़का आ गया था, कुछ अजीब मसखरा सा, बिल्कुल उजड्ड और दहकानी, कोई बात ही न समझता उसके फुल्के इकलीदस की शक्लों से भी ज्यादा मुख्तलिफुल अश्काल हो जाते बीच में मोटे, किनारे पतले, दाल कभी तो इतनी पतली जैसे चाय और कभी इतनी गाढ़ी जैसे दही,

कभी नमक इतना कम कि बिल्कुल फीका कभी तो इतना तेज कि नीबू का नमकीन अचार। आशा सवेरे ही से रसोई में पहुंच जाती और उस बद सलीके महराज को खाना पकाना सिखाती, 'तुम कितने नालायक आदमी हो जुगल? इतनी उम्र तक तुम क्या घास खोदते रहे या भाड़ झोंकते रहे कि फुल्के तक नहीं बना सकते।'

जुगल आँखों में आँसू भरकर कहता है, 'बहू जी अभी मेरी उम्र ही क्या है। सतरहवां ही साल तो है।"

आशा हँस पड़ी, 'तो रोटियाँ पकाना क्या दस-बीस साल में आता है?'

'आप एक महीना सिखा दें बहूजी, फिर देखना में आपको कैसे फुल्के खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाये। जिस दिन मुझे फुल्के बनाने आ जाऐंगे मैं आपसे कोई इनाम लूंगा। सालन तो अब कुछ पकाने लगा हूँ ना?'

आशा हौसला अफ्जा तबस्सुम से बोली, 'सालन नहीं दवा पकाना आता है, अभी कल ही नमक इतना तेज था कि खाया ना गया।'

'मैं जब सालन बना रहा था तो आप यहां कब थीं?'

'अच्छा तो जब मैं यहां बैठी रहूं। तब तुम्हारा सालन लजीज पकेगा?'

'आप बैठी रहती हैं तो मेरी अकल ठिकाने रहती है।'

'और में नहीं रहती तब?'

'तब तो आपके कमरे के दरवाजे पर जा बैठती है।'

'तुम्हारे दादा आ जाऐंगे तो तुम चले जाओगे?'

'नहीं बहू जी किसी और काम में लगा दीजिएगा। मुझे मोटर चलवाना सिखवा दीजिएगा। नहीं, नहीं आप हट जाईए में पतीली उतार लूंगा। ऐसी अच्छी साड़ी आपकी कहीं दाग लग जाये तो क्या हो?'

'दूर हो, फूहड़ तो तुम ही हो। कहीं पतीली पैर पर गिर पड़े तो महीनों झेलोगे।'

जुगल अफ्सुर्दा हो गया। नहीफ चेहरा और भी खुश्क हो गया।

आशा ने मुस्कुराकर पूछा, 'क्यों मुँह क्यों लटक गया सरकार का?'

'आप डाँट देती हैं बहूजी, तो मेरा दिल टूट जाता है, सेठ जी कितना ही घुड़कीं दें मुझे जरा भी सदमा नहीं होता। आपकी नजर कड़ी देखकर जैसे मेरा खून सर्द हो जाता है।'

आशा ने तशफ्फी दी, 'मैंने तुम्हें डाँटा नहीं। सिर्फ इतना ही कहा कि कहीं पतीली तुम्हारे पांव पर गिर पड़े तो क्या होगा?'

'हाथ तो आपका भी है, कहीं आपके हाथ से ही छूट पड़े तब?'

सेठ जी ने रसोई के दरवाजे पर आकर कहा, 'आशा जरा यहां आना, देखो तुम्हारे लिए कितने खुशनुमा गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जाऐंगे। तुम वहां धुंए धक्कड़ में क्या परेशान हो रही हो। लौंडे को कह दो कि महराज को बुलाए वर्ना मैं कोई दूसरा इंतिजाम कर लूंगा। महराज की कमी नहीं है। आखिर कब तक कोई रिआयत करे, इस गधे को जरा भी तो तमीज न आई। सुनता है जुगल, आज लिख दे अपने बाप को।'

चूल्हे पर तवा रखा हुआ था, आशा रोटियाँ बेल रही थी, जुगल तवे को लिए रोटियों का इंतिजार कर रहा था। ऐसी हालत में भला वो कैसे गमले देखने जाती? कहने लगी, 'अभी आती हूँ जरा रोटी बेल रही हूँ, छोड़ दूँगी तो जुगल टेढ़ी-मेढ़ी बेलेगा।'

लाला जी ने कुछ चढ़कर कहा, 'अगर रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेलेगा तो निकाल दिया जाएगा।'

आशा अनसुनी करके बोली, 'दस-पाँच दिन में सीख जाएगा। निकालने की क्या जरूरत है।'

'तुम चल कर बता दो गमले कहाँ रखे जाऐंगे?'

'कहती हूँ रोटियाँ बेल कर आई जाती हूँ।'

'नहीं मैं कहता हूँ तुम रोटियाँ मत बेलो।'

'तुम ख्वाह-मखाह जिद करते हो।'

लाला जी सन्नाटे में आगए। आशा ने कभी इतनी बे-इल्तिफाती से उन्हें जवाब न दिया था। और ये महज बे-इल्तिफाती न थी इसमें तुर्शी भी थी, खफीफ हो कर चले गए। उन्हें गुस्सा ऐसा आ रहा था कि इन गमलों को तोड़ कर फेंक दें और सारे पौदों को चूल्हे में डाल दें।

जुगल ने सहमे हुए लहजे में कहा, 'आप चली जातीं बहूजी, सरकार नाराज होंगे।'

'बको मत, जल्दी रोटियाँ सेंको, नहीं तो निकाल दिए जाओगे। और आज मुझसे रुपये लेकर अपने लिए कपड़े बनवा लो भिक्मंगों की सी सूरत बनाए घूमते हो और बाल क्यों इतने बढ़ा रखे हैं। तुम्हें नाई भी नहीं जुड़ता?'

'कपड़े बनवा लूं तो दादा को क्या हिसाब दूँगा?'

'अरे बेवकूफ, मैं हिसाब में नहीं देने को कहती मुझसे ले जाना।'

'आप बनवाईंगी तो अच्छे कपड़े लूँगा। मैं खद्दर का कुर्ता, खद्दर की धोती, रेशमी चादर और अच्छा सा चप्पल।'

आशा ने मिठास भरे तबस्सुम से कहा, 'और अगर अपने दाम से बनवाना पड़े तो?'

'तब कपड़े बनवाऊंगा ही नहीं।'

'बड़े चालाक हो तुम।'

'आदमी अपने घर पर रूखी रोटी खा कर सो रहता है लेकिन दावत में अच्छे-अच्छे पकवान ही खाता है।'

'ये सब में नहीं जानती एक गाढे का कुर्ता बनवा लो और एक टोपी हजामत के लिए दो आने पैसे ले लो।'

'रहने दीजिए, मैं नहीं लेता। अच्छे कपड़े पहनकर निकलूँगा तो आपकी याद आएगी। सड़ियल कपड़े हुए तो जी जलेगा।'

'तुम बड़े खुद-गरज हो, मुफ्त के कपड़े लोगे और आला दर्जे के।'

'जब यहां से जाने लगूँगा तो आप मुझे अपनी तस्वीर दे दीजिएगा।'

'मेरी तस्वीर लेकर क्या करोगे?'

'अपनी कोठरी में लगा दूंगा और देखा करूँगा, बस वही साड़ी पहन कर खिंचवाना जो कल पहनी थी और वही मोतियों वाली माला भी हो। मुझे नंगी-नंगी सूरत अच्छी नहीं लगती आपके पास तो बहुत गहने होंगे आप पहनती क्यों नहीं?'

'तो तुम्हें गहने अच्छे लगते हैं?'

'बहुत।'

लाला जी ने खिफ्फत आमेज लहजे में कहा, 'अभी तक तुम्हारी रोटियाँ नहीं पकीं, जुगल अगर कल से तुमने अपने आप अच्छी रोटियाँ न बनाईं, तो मैं तुम्हें निकाल दूँगा?'

आशा ने फौरन हाथ धोए और बड़ी मसर्रत आमेज तेजी से लाला जी के साथ जाकर गमलों को देखने लगी। आज उसके चेहरे पर गैरमामूली शगुफ्तगी नजर आरही थी, उसके अंदाज-ए-गुफ्तुगू में भी दिल-आवेज शीरीनी थी। लाला जी की सारी खिफ्फत गायब हो गई। आज उसकी बातें जबान से नहीं दिल से निकलती हुई मालूम हो रही थीं। बोली, 'मैं इनमें से कोई गमला न जाने दूँगी, सब मेरे कमरे के सामने रखवाना, सब कितने सुंदर पौदे हैं। वाह इनके हिन्दी नाम भी बता देना।'

लाला जी ने छेड़ा, 'सब लेकर क्या करोगी? दस-पाँच पसंद कर लो बाकी बाहर बागीचे में रखवा दूँगा।'

'जी नहीं मैं एक भी नहीं छोड़ूँगी, सब यहीं रखे जाऐंगे।'

'बड़ी हरीस हो तुम।'

'हरीस सही, मैं आपको एक भी न दूँगी।'

'दस-पाँच तो दे दो, इतनी मेहनत से लाया हूँ।'

'जी नहीं इनमें से एक भी न मिलेगा।'

दूसरे दिन आशा ने अपने को जेवरों से खूब आरास्ता किया और फीरोजी साड़ी पहनकर निकली तो लाला जी की आँखों में नूर आ गया। अब उनकी आशिकाना दिलजोइयों का कुछ असर हो रहा है जरूर, वर्ना उनके बार-बार तकाजा करने पर मिन्नत करने पर भी उसने कोई जेवर न पहना था, कभी कभी मोतियों का हार गले में डाल लेती थी वो भी बेदिली से। आज उन जेवरों से मुरस्सा होकर वो फूली नहीं समाती। इतराती जाती है। गोया कहती है देखो मैं कितनी हसीन हूँ पहले जो कली थी वो आज खिल गई है।

लाला साहिब पर घड़ों का नशा चढ़ा हुआ है, वो चाहते हैं उनके अहबाब-ओ-अइज्जा आकर इस सोने की रानी के दीदार से अपनी आँखें रोशन करें, देखें कि उनकी जिंदगी कितनी पुर-लुत्फ है। जो अन्वा-ओ-इकसाम के शकूक दुश्मनों के दिलों में पैदा हुए थे। आँखें खोल कर देखें कि एतिमाद, रवादारी और फिरासत ने कितना खुलूस पैदा कर दिया है। उन्होंने तजवीज की, 'चलो कहीं सैर कर आएं। बड़ी मजेदार हवा चली रही है।'

आशा इस वक़्त कैसे आ सकती है, अभी उसे रसोई जाना है, वहां से कहीं बारह एक बजे तक फुर्सत मिले फिर घर के काम धंदे सर पर सवार हो जाऐंगे, उसे कहाँ फुर्सत है। फिर कल से उसके कलेजे में कुछ दर्द भी हो रहा है, रह-रह कर दर्द उठता है। ऐसा दर्द कभी न होता था। रात न जाने क्यों दर्द होने लगा।

सेठ जी एक बात सोचकर दिल ही दिल में फूल उठे वो गोलीयां रंग ला रही हैं। राज वैद ने आखिर कहा भी था कि जरा सोच समझकर इसका इस्तिमाल कीजिएगा, क्यों न हो खानदानी वैद है। उसका बाप महाराजा बनारस का मुआलिज था, पुराने मुजर्रिब नुस्खे हैं उसके पास। चेहरे पर सरासीमगी का रंग भर कर पूछा, 'तो रात ही से दर्द हो रहा है। तुमने मुझसे कहा नहीं वर्ना वैद जी से कोई दवा मंगवा देता।'

'मैंने समझा था कि आप ही आप अच्छा हो जाएगा मगर अब बढ़ रहा है।'

'कहाँ दर्द हो रहा है? जरा देखूं तो कुछ आमास तो नहीं है?'

सेठ जी ने आशा के आँचल की तरफ हाथ बढ़ाया। आशा ने शर्मा कर सर झुका लिया और बोली, 'यही तुम्हारी शरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। जाकर कोई दवा ला दो।'

सेठ जी अपनी जवांमर्दी का ये डिप्लोमा पाकर उससे कहीं ज्यादा महजूज हुए, जितना शायद 'राय बहादुरी' का खिताब पाकर होते, अपने इस कार-ए-नुमायां की दाद लिए बगैर उन्हें कैसे चैन हो जाता। जो लोग उनकी शादी से मुताल्लिक शुब्हा आमेज सरगोशियाँ करते थे उन्हें जक देने का कितना नादिर मौका हाथ आया है, पहले पण्डित भोलानाथ के घर पहुंचे और बादल-ए-दर्द मंद बोले, 'मैं तो भई सख्त मुसीबत में मुब्तिला हो गया, कल से उनके सीने में दर्द हो रहा है कुछ अक्ल काम नहीं करती, कहती हैं ऐसा दर्द पहले कभी नहीं हुआ था।'

भोलानाथ ने कुछ ज्यादा हमदर्दी का इजहार नहीं किया। बोले, 'हवा लग गई होगी, और क्या?'

सेठ जी ने उनसे इख्तिलाफ किया, 'पंडित जी हवा का फसाद नहीं है। कोई अंदरूनी शिकायत है। अभी कमसिन हैं ना? राज वैद से कोई दवा लिये लेता हूँ।'

'मैं तो समझता हूँ आप ही आप अच्छा हो जाएगा।'

'आप बात नहीं समझते यही आप में नुक्स है।'

'आपका जो ख्याल है वो बिल्कुल गलत है मगर खैर दवा लाकर दीजिए और अपने लिए भी दवा लेते आईएगा।'

सेठ यहां से उठकर अपने दूसरे दोस्त लाला फागमल के पास पहुंचे और उनसे भी करीब उन्हीं अलफाज में पुरमलाल खबर कही। फागमल बड़ा शुह्दा था। मुस्कुराकर बोला, 'मुझे तो आपकी शरारत मालूम होती है।'

'मैं अपना दुख सुना रहा हूँ और तुम्हें मजाक सूझता है, जरा भी इन्सानियत तुम में नहीं है।'

'मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ, भला इसमें मजाक की क्या बात है वो हैं कमसिन, नाजुक इंदाम। आप ठहरे आजमूदा-कार, मर्द-ए-मैदान। बस अगर ये बात न निकले तो मूँछें मुंडवा डालूं।'

सेठ जी ने मतीन सूरत बनाई, 'मैं तो भई बड़ी एहतियात करता हूँ, तुम्हारे सर की कसम।'

'जी रहने दीजिए मेरे सर की कसम न खाइए मेरे भी... बाल बच्चे हैं। घर का अकेला आदमी हूँ। किसी कातेअ दवा का इस्तिमाल कीजिए।'

'उन्हें राज वैद से कोई दवा लिये लेता हूँ।'

'इसकी दवा वैद जी के पास नहीं आपके पास है।'

सेठ जी की आँखों में नूर आ गया, शबाब का एहसास पैदा हुआ और इसके साथ चेहरे पर भी शबाब की झलक आ गई, सीना जैसे कुछ फराख हो गया। चलते वक्त उनके पैर कुछ ज्यादा मजबूती से जमीन पर पड़ने लगे। और सर की टोपी भी खुदा जाने क्यों कज हो गई। बुशरे से एक बांकपन की शान बरस रही थी। राज वैद ने मुज्दा-ए-जाँफिजा सुनाया तो बोले, 'मैंने कहा था जरा सोच समझ कर उन गोलियों का इस्तिमाल कीजिएगा। आपने मेरी हिदायत पर तवज्जो न की। जरा महीने दो महीने उनका इस्तिमाल कीजिए और परहेज के साथ रहिए, फिर देखिए उनका एजाज। अब गोलियां बहुत कम रही हैं लूट मची रहती है लेकिन उनका बनाना इतना मुश्किल और दिक्कत तलब है कि एक-बार खत्म हो जाने पर महीनों तैयारी में लग जाते हैं। हजारों बूटियाँ हैं। कैलाश नेपाल और तिब्बत से मंगानी पड़ती हैं, और उसका बनाना तो आप जानते हैं कितना लोहे के चने चबाना है... आप एहतियातन एक शीशी लेते जाइए।'

जुगल ने आशा को सर से पांव तक जगमगाते देखकर कहा, 'बस बहू जी आप इसी तरह पहने ओढ़े रहा करें। आज मैं आपको चूल्हे के पास न आने दूँगा।'

आशा ने शरारत आमेज नजरों से देखकर कहा, 'क्यों आज ये सख्ती क्यों? कई दिन तो तुमने मना नहीं किया।'

'आज की बात दूसरी है।'

'जरा सुनूँ तो क्या बात है।'

'मैं डरता हूँ कहीं आप नाराज न हो जाएं।'

'नहीं-नहीं कहो, मैं नाराज न हूँगी।'

'आज आप बहुत सुंदर लग रही हैं।'

लाला डंगामल ने सैंकड़ों ही बार आशा के हुस्न-ओ-अंदाज की तारीफ की थी, मगर उनकी तारीफ में उसे तसन्नो की बू आती थी। वो अलफाज उनके मुँह से कुछ इस तरह से लगते थे जैसे कोई हिजड़ा तलवार लेकर चले। जुगल के इन अलफाज में एक कैफ था, एक सुरूर था। एक हैजान था, एक इज्तिराब था। आशा के सारे जिस्म में रअशा आ गया। आँखों में जैसे नशा छा जाये।

'तुम मुझे नजर लगा दोगे। इस तरह क्यों घूरते हो?'

'जब यहां से चला जाऊँगा तो तब आपकी बहुत याद आएगी।'

'रोटी बनाकर तुम क्या करते हो? दिखाई नहीं देते।'

'सरकार रहते हैं। इसीलिए नहीं आता फिर अब तो मुझे जवाब मिल रहा है, देखिए भगवान कहाँ ले जाते हैं।'

आशा का चेहरा सुर्ख हो गया, 'कौन तुम्हें जवाब देता है।'

'सरकार ही तो कहते हैं तुझे निकाल दूँगा।'

'अपना काम किये जाओ। कोई नहीं निकालेगा। अब तो तुम रोटियाँ भी अच्छी बनाने लगे।'

'सरकार हैं बड़े गुस्सा वर।'

'दो-चार दिन में उनका मिजाज ठीक किये देती हूँ।'

'आपके साथ चलते हैं तो जैसे आपके बाप से लगते हैं।'

'तुम बड़े बद-मआ'श हो खबरदार, जबान सँभाल कर बातें करो।'

मगर खफगी का ये पर्दा उसके दिल का राज ना छिपा सका वो रोशनी की तरह उसके अंदर से बाहर निकला पड़ता था। जुगल ने उसी बेबाकी से कहा, 'मेरी जबान कोई बंद कर ले। यहां तो सभी कहते हैं। मेरा ब्याह कोई पच्चास साल की बुढ़िया से कर दे तो मैं घर छोड़कर भाग जाऊं, या खुद जहर खा लूँ या उसे जहर देकर मार डालूं, फांसी ही तो होगी।'

आशा मस्नूई गुस्सा कायम न रख सकी। जुगल ने उसके दिल के तारों पर मिज़्राब की एक ऐसी चोट मारी थी कि उसके बहुत मजबूत करने पर भी दर्द-ए-दिल बाहर निकल ही आया, 'किस्मत भी तो कोई चीज है।'

'ऐसी किस्मत जाये जहन्नुम में।'

'तुम्हारी शादी किसी बुढ़िया से करूँगी, देख लेना।'

'तो मैं भी जहर खा लूँगा, देख लीजिएगा।'

'क्यों? बुढ़िया तुम्हें जवान से ज्यादा प्यार करेगी। ज्यादा खिदमत करेगी। तुम्हें सीधे रास्ते पर रखेगी।'

'ये सब माँ का काम है। बीवी जिस काम के लिए है उसी के लिए है।'

'आखिर बीवी किस काम के लिए है।'

'आप मालिक हैं नहीं तो बतला देता किस काम के लिए है।'

मोटर की आवाज आई, न जाने कैसे आशा के सर का आँचल खिसक कर कंधे पर आ गया था, उसने जल्दी से आँचल सर पर खींच लिया। और ये कहती हुई अपने कमरे की तरफ चली, 'लाला खाना खाकर चले जाऐंगे, तुम जरा आ जाना।'

कहानी

मैं और ताजमहल

• देवी नागरानी

'मैं और ताजमहल' एक मार्मिक प्रेमकथा है, जो सामाजिक विद्रूपताओं, वर्ग-भेद और प्रेम की असहायता को बड़े भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करती है। यह कहानी केवल एक प्रेम-विरह कथा नहीं, बल्कि भारतीय समाज की उन सच्चाइयों का आईना है जहाँ जात-पात, आर्थिक हैसियत और सामाजिक मान्यताएं व्यक्तिगत इच्छाओं और भावनाओं पर भारी पड़ जाती हैं।

...और वह चला गया! दिल ने हजार बार पुकारा, पर मैं उसे आवाज न दे सकी। दिल और दिमाग की जंग में जीत दिमाग की हुई।

अब तक हैरान हूँ- कल तक जिसे मैंने अपने जीवन से भी अधिक चाहा, अपनी साँसों में बसाया, वही समीर आज इतना पराया कैसे हो गया? मैं चाहकर भी उसे रोक नहीं पाई। और अगर रोक भी लेती, तो क्या होता? जो होना था, वह तो हो चुका। अब तो बस हर कोई तमाशबीन बनकर देख रहा है- घर के सदस्य, रिश्तेदार, आस-पड़ोस के लोग। लोग हैं, वे तो देखेंगे, कहेंगे। पर जिसे देखे बिना मेरी सुबह नहीं होती थी, दिन ढलने से पहले जिससे कई बार बात किए बिना समय कटता नहीं था, उसे जाते देख मेरे भीतर एक गहरा खालीपन भर गया। उस दिन उसी ने तो फोन पर बताया था कि वह किसी जरूरी काम से दस दिन के लिए बाहर जा रहा है।

'दस दिन! एक नहीं, दो नहीं, पूरे दस दिन?' -मैंने फोन पर रूठे हुए अंदाज में कहा।

'अरे, मेरी बात तो सुनो पूर्वी! अभी कल शाम को ही तो हम मिले थे। तुमसे मिलकर लौटा ही था कि ऑफिस से इंटरव्यू के लिए प्रवेश पत्र मिला। इंटरव्यू का समय कल ही निर्धारित है और मुझे आज ही रवाना होना होगा। तुमसे बात करके तुरंत निकलूँगा। सात घंटे का सफर भी है।'

'कहाँ जा रहे हो?'

'आगरा... वहीं हेड ऑफिस है।'

'तो तुम मुझसे मिले बिना ही चले जाओगे?'

'मिलूँगा, जरूर मिलूंगा। दस दिन बाद जब लौटूंगा, भगवान ने चाहा तो कोई खुशखबरी भी दूंगा।'

'समीर, बिना तुम्हें देखे ये दस दिन कैसे गुजरेंगे? मैं तो...'

'पूर्वी, अब कुछ मत कहो प्लीज! जिंदगी मुझे आवाज देकर बुला रही है। मैं यह मौका कैसे छोड़ सकता हूँ? शायद हमारे भविष्य को वह हमसे ज्यादा पहचानती है। और हाँ, तुम मन लगाकर पढ़ना। अब तुम्हारी परीक्षा में बहुत कम समय बचा है। तुम्हारा बी.ए. हो जाए, फिर फुर्सत से बैठकर हम अपने बारे में भी सोचेंगे। कुछ न कुछ तो करना ही होगा!'

'समीर, मैं भी तो दिन-महीने ही गिनती रहती हूँ। एक महीने बाद परीक्षा है। फिर पढ़ाई से मुक्त होकर तुम्हारे स्नेहभरे बंधन में उम्रभर के लिए बंध जाना चाहती हूँ।'

पूर्वी कुछ और कहती, यदि समीर ने उसे रोका न होता, 'हाँ, एक बात और पूर्वी, मेरी गैरहाजिरी में तुम्हें बाबा का हाथ बंटाना है। हर दिन एक घंटा 'बाल भवन' आकर कार्यक्रमानुसार किसी विषय पर बातचीत करनी होगी।

देवी नागरानी का जन्म 1941 में कराची, सिंध (पाकिस्तान) में हुआ। उन्होंने आठ गजल-काव्य संग्रह, दो भजन-संग्रह तथा आठ सिंधी से हिंदी अनूदित कहानी-संग्रह प्रकाशित किए हैं। वे सिंधी, हिंदी और अंग्रेजी में समान अधिकार से लेखन करती हैं और हिंदी-सिंधी के बीच अनुवाद कार्य भी करती हैं। उनकी प्रमुख कृतियों में श्री मोदी का काव्य संग्रह, चौथी कूट (साहित्य अकादमी से प्रकाशित), अत्तिया दाऊद और रूमी के सिंधी अनुवाद शामिल हैं। देवी नागरानी को एनजे, एनवाई, ओस्लो, तमिलनाडु, कर्नाटक, रायपुर, जोधपुर, महाराष्ट्र, केरल सहित विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है। उन्हें साहित्य अकादमी और राष्ट्रीय सिंधी विकास परिषद से भी पुरस्कृत किया गया है। उनकी साहित्य सेवा और भाषा-संस्कृति के प्रति योगदान महत्वपूर्ण है।

संपर्कः **9-डी, कार्नर व्यू सोसाइटी, 15/33 रोड, बांद्रा, मुम्बई 400050**

और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि अगले महीने तुम्हारी फाइनल परीक्षा है। पढ़ाई में कोई कमी नहीं आनी चाहिए- यह वादा करो।'

'मेरा वादा है समीर! मुझे भी उस पल का इंतजार है, जब...'

'बस, अब कुछ मत कहो। बस मेरे लौटने का इंतजार करना।' -समीर ने बात को विराम दिया।

'समीर, वहाँ से मेरे लिए क्या लाओगे?' -जाने से पहले पूर्वी ने पूछा।

'प्रेम का प्रतीक- एक सलोना-सा ताजमहल!'

वह चला गया- उस मंजिल की ओर, जो उसका इंतजार कर रही थी। उसे खुद पर भरोसा था, पर आने वाले कल की कोई भनक न थी। वह बस एक बात जानता था- पूर्वी के पिता यह कतई नहीं चाहते थे कि वे दोनों मिलें, स्नेह बढ़ाएं, या फिर विवाह की बात सोचें। वह अक्सर सोचता- आखिर ऐसा क्या है जिसमें वह कमतर है? वह एम.ए. पास है, एक प्रतिष्ठित फर्म में स्थायी नौकरी करता है, एक छोटा-सा पर अपना घर है, और अब यह प्रमोशन के लिए इंटरव्यू का पत्र, जो उसे आगरा ले जा रहा है। अगर सफल हुआ, तो दस दिन की ट्रेनिंग के बाद नई शुरुआत... पर जब तक पूर्वी के पिता को यह रिश्ता मंजूर न होगा, सब व्यर्थ है। उसे सब कुछ मिला- शिक्षा, काम, आत्मनिर्भरता- फिर भी रामलाल प्रसाद उसे अपनी बेटी के लिए अयोग्य क्यों समझते हैं?

'अब तो तुम्हें अपनी जात की कोई भली सी लड़की देखकर शादी कर लेनी चाहिए। अच्छा-खासा कमा लेते हो, घर भी है, बस जाओ!' -एक दिन घर से निकलते ही रामलाल प्रसाद ने यह सलाह देकर संकेत दे दिया।

'जी अंकल, जरूर करूंगा, यह तो तय है। पर थोड़ा वक्त लगेगा। किसके साथ भाग्य की रेखाएं जुड़ेंगी, यह तो ऊपरवाला ही जानता है।' -समीर ने संयम से उत्तर दिया।

'यह तो है... माता-पिता या कोई सगा-संबंधी होता तो बात और होती। अब तुम्हें एक जीवन संगिनी की जरूरत है, ताकि तुम्हारा गृहस्थ जीवन भी बस सके।'

'मतलब...?' -समीर सटपटा गया। उसे भीतर से कुछ टूटता-सा महसूस हुआ। लेकिन वह रुका नहीं, आगे बढ़ता गया।

पिछले चार सालों से पूर्वी और समीर एक ही कॉलेज में पढ़ते रहे, मिलते रहे, बतियाते रहे। कब यह मित्रता स्नेह में बदली और फिर स्नेह प्रेम में, उन्हें पता ही न चला। समीर ने बी.ए. के बाद एम.ए. पूरा कर लिया और अपनी मेहनत से जीवन में एक मुकाम हासिल किया। बस्ती में समीर के धर्म-पिता दीनानाथ अगम का बहुत नाम था। वे एक सच्चे और सरल अध्यापक के रूप में प्रसिद्ध थे। मैट्रिक पास दीनानाथ जी ने जीवनभर एक पाठशाला में शिक्षक रहते हुए इज्जत और आत्मसंतोष से जीवन बिताया। औलाद न होने के कारण उन्होंने जीवन को समाजसेवा के लिए समर्पित कर दिया और एक मिशन के रूप में 'अगम बाल भवन' की नींव रखी। उनकी पत्नी मीरा, पहले सहयोगिनी और फिर पूर्ण रूप से इस कार्य में सहकारिणी बन गईं। वे दोनों मिलकर आसपास की बस्तियों के गरीब बच्चों को पढ़ाते थे। इन बच्चों के माता-पिता दफ्तरों, बागों और घरों में काम करते थे- ऐसा काम, जो रोजी-रोटी के लिए एक प्रकार की मजबूरी और मजदूरी थी। 'अगम बाल भवन' में जब नियमित रूप से निःशुल्क शिक्षा दी जाने लगी, तो धीरे-धीरे माहौल बदलने लगा। अब गरीब माता-पिता भी समय पर बच्चों को भेजने लगे और 'बाल भवन' को शिक्षा का मंदिर मानने लगे। एक दिन दीनानाथ जी ने समीर के बारे में मीरु काका से कहा- 'उसे भी तो जीवन संवारने का अवसर दो। दिनभर आपके पीछे-पीछे खेतों में फिरता है, इसे पढ़ने भेजो।'

दो दिन बाद मीरु काका समीर को लेकर आए और 'अगम बाल भवन' में उसका नाम दर्ज करवा दिया। दीनानाथ जी बोले, 'समीर बहुत मेधावी लड़का है। देखना, एक दिन वह इस कस्बे का नाम रोशन करेगा।'

कुछ समय बाद मीरु काका इस दुनिया से विदा हो गए। अब समीर के लिए बाल भवन ही उसका घर था। दीनानाथ जी ने उसे कभी बेसहारा नहीं होने दिया। समीर को इस तरह तराशा गया कि वह कंकर से हीरा बन गया।

बाल भवन के बगल में सेठ रामलाल प्रसाद की कोठी थी। धीरे-धीरे उन्होंने और कुछ अन्य अमीर लोगों ने इसका विरोध शुरू कर दिया।

'यह क्या कोई चौपाल है, जहाँ हर रोज शाम को कोई न कोई चर्चा लेकर लोग इकट्ठा हो जाते हैं?'

'भीड़ लगती है, शोर होता है... अगर पढ़ाने-पढ़ने का इतना ही शौक है तो किसी स्कूल में करिए।' -यह आवाज सेठ रामलाल प्रसाद की थी। उन्हें लगता था कि गरीब बच्चों का उनके मोहल्ले में आना-जाना उनके मान-सम्मान को ठेस पहुँचाएगा। लेकिन ज्ञान और अज्ञान के बीच का फर्क वही है जो उजाले

और अंधेरे के बीच होता है। दीनानाथ अगम ने हार नहीं मानी। उन्होंने मंदिर के पुजारी से सहयोग मांगा। पुजारी ने शाम की आरती से पहले दो घंटे मंदिर का चबूतरा उपयोग करने की अनुमति दे दी।

इंसान का मन भी अजीब होता है- जिसके पास बहुत कुछ है, वह बांटना नहीं चाहता। और जिसके पास कुछ नहीं होता, वह बहुत कुछ निछावर करना चाहता है। पुजारी में अब भी इंसानियत बाकी थी। हफ्ते में तीन दिन चर्चा के कार्यक्रम शुरू हुए। विषय होते- संस्कार, दया-भाव, सहयोग, ईमानदारी... और बोलने वाले होते दीनानाथ अगम और पुजारी जी। धीरे-धीरे लोगों के मन से हीनता हटने लगी, और आत्मविश्वास उभरने लगा। इस बैठक में समीर भी बैठता, चर्चा करता। अब तो आसपास के अमीर बंगलों के बच्चे भी आने लगे। और एक दिन... पूर्वी, सेठ रामलाल प्रसाद की बेटी, भी वहाँ आ बैठी। पिता ने बहुत रोका, समझाया, धमकाया- पर वह न रुकी।

भेदभाव की दीवारें कमजोर पड़ने लगी थीं। मानवता के नए अंकुर दिलों में पनपने लगे थे। समय बीतता गया... आठ साल। बच्चे बड़े हुए। जो कस्बे में पढ़ते थे, अब शहर का रुख करने लगे। समीर कॉलेज गया, तो दो साल बाद पूर्वी ने भी वहीं दाखिला लिया। स्नेह का नाता कब प्रेम में बदला, उन्हें पता ही न चला। लेकिन प्रेम शब्दों से नहीं, मौन और निष्ठा से उभरा- सच्चा और गहरा।

अब जब समीर अपने जीवन की एक नई सीढ़ी पर चढ़ रहा था, पूर्वी उसका साथ देने को तैयार थी।

'समीर, बी.ए. के बाद मैं तुम्हारे हर कार्य में सहभागी बनना चाहती हूँ।' -एक दिन पूर्वी ने अपने दिल की बात कही।

'अरी पगली! अभी तो परीक्षा की तैयारी में मन लगाओ। समय आने पर मैं तुम्हारे पिताजी से बात करूंगा।' -समीर ने कहा।

'उन्होंने कभी संकेत तो दिया है कि उन्हें यह रिश्ता मंजूर नहीं...'

'हाँ, कहा है कि मुझे अपनी जात की कोई भली सी लड़की देखकर शादी कर लेनी चाहिए।'

'तुमने उन्हें बताया नहीं कि हम दोनों साथ जीवन बिताना चाहते हैं?'

'मैं नहीं कह सका। तुम कोशिश करके देखो।' -कहते हुए समीर ने हौले से उसके गाल पर थपकी दी।

'मैं जानती हूँ पिताजी कट्टर हैं, जिद्दी हैं। और तो और, वे इस शिक्षा प्रणाली को मलेरिया की तरह फैलता देख नाराज हैं। लेकिन फिर भी... मैं बात करने की कोशिश करूंगी।'

समीर चला गया... एक आस, एक प्यास दिल में लेकर। पूर्वी के दिल में धधकती आग को शांत करने के बजाय, उसके पिता रामलाल प्रसाद ने उस पर और घी डाल दिया। एक पिता होने की दस्तावेजी हैसियत से, पूर्वी से बिना पूछे उसका विवाह एक रईस व्यापारी परिवार में तय कर दिया। पूर्वी की सांसें जैसे थम-सी गईं, 'पिताजी...!'

'कुछ कहने-सुनने का समय नहीं है। बात बन आई है, खुशी-खुशी स्वीकार करो। जिंदगी सिर्फ शब्दों का खेल नहीं है, उसे सँवारने के लिए और भी बहुत कुछ चाहिए। मैंने तुम्हारा भला सोचा है, और इसी में तुम्हारा भला है।'

'पर... मेरी परीक्षा...!' -उसके शब्द गले में घुट कर रह गए।

उसी समय फोन की घंटी बजी। रामलाल प्रसाद ने फोन उठाया। समीर की आवाज थी।

'समीर... पूर्वी अभी बात नहीं कर पाएगी। घर में मेहमान हैं। शादी के शगुन शुरू हो रहे हैं।' -रामलाल प्रसाद ने संजीदा स्वर में कहा।

'अंकल, किसकी शादी है?'

'पूर्वी की... और किसकी?'

'मुझे तो कुछ पता ही नहीं था!'

'अरे, यह भी नहीं मालूम? तुम तो पूर्वी के अच्छे दोस्त हो। मैं तो तुमसे बहुत उम्मीद किए बैठा था कि शादी में मदद करोगे। पता चला कि तुम बाहर गए हो... चलो कोई बात नहीं, अब काम बहुत है... फोन रखता हूँ।'

'अंकल, शादी कब है?'

'आज शुक्रवार है। रविवार को शादी है और सोमवार को बारात कानपुर रवाना होगी। बस... राम का आसरा है, सब ठीक होगा।'

यह शब्द नहीं थे- पिघला हुआ शीशा था। जो पूर्वी के कानों से भीतर रिस गया। दिल को ऐसा सदमा पहुँचा कि उसका अपना वजूद भी अब पराया लगने लगा। अब वह एक गुड़िया बन गई थी- जिसे दो दिन बाद सजा-संवार कर किसी अनजाने व्यक्ति के साथ ब्याह दिया जाएगा। जिसे उसने कभी देखा तक नहीं। जिसके साथ जीने के सपने देखे थे, उन्हीं सपनों को अब खुद अपने हाथों से तोड़ना होगा। लेकिन भुलाना भी क्या किसी के बस में होता है? जिसने

हर सांस में समीर को जिया हो, वह उसे कैसे भुला पाए? पिता ने फैसला सुना दिया- न बात की, न राय ली। गुनाह नहीं बताया, बस सजा दे दी।

‘पूर्वी...!’ -समीर की साँसों से सनी आवाज!

‘समीर...!’ -पूर्वी का कांपता स्वर!

‘बधाई हो...!’

‘...’

रामलाल प्रसाद बोले- ‘समीर, अच्छा हुआ वक्त पर आ गए। अब कुछ काम संभालो। बाहर मेहमान आ रहे हैं। कोई कमी न रह जाए।’

समीर ने हारे हुए सिपाही की तरह चुपचाप एक पैकेट पूर्वी की ओर बढ़ाया। पूर्वी की आँखें पूछ रही थीं- ‘ये क्या है?’

‘यह... प्रेम का प्रतीक... सलोना-सा... ताजमहल।’ -समीर बस इतना ही कह सका।

दोनों के हाथ कांप रहे थे। पल में एक भूचाल आया। समीर पलटा और चल पड़ा।

और पीछे... वह ताजमहल- प्रेम की निशानी- हाथ से गिरकर टूट गया। मिनटों में बिखर गया... पर उसकी टूटने की आवाज किसी ने नहीं सुनी।

प्रेम का प्रतीक- टूटा हुआ ताजमहल उनके बीच पड़ा था। सवाल करती आँखें, चुप रह गए होंठ मौन में जैसे कह रहे थे, ‘ये हूँ मैं... और ये है ताजमहल...’

अब भी एक अनछुआ अहसास, खंडहरों में सांस लेता है... धीरे-धीरे... मौन में...!

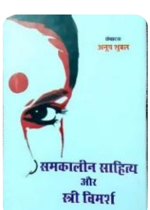

समकालीन साहित्य और स्त्री विमर्श

अनूप शुक्ल (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-5-8

संस्करण : 2015, मूल्य : 400/-

कहानी

लड़कियां डरती नहीं हैं

• नीरजा हेमेन्द्र

यह कहानी घरेलू हिंसा और परिवार के अंदर छुपे खतरे को संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत करती है। नायिका के डर, अकेलेपन और साहस की जद्दोजहद पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है। कहानी यह संदेश देती है कि डर को छुपाने की बजाय सामना करना जरूरी है और परिवार को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। भाषा सरल और भावनात्मक है, जो विषय की गंभीरता को प्रभावी ढंग से व्यक्त करती है।

उसकी आज भी स्कूल जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। मन अत्यंत उदास था। वह अपनी माँ से यह बताना चाहती थी कि अब वह पढ़ना नहीं चाहती। वह पूरा दिन अपनी माँ के साथ बिताना चाहती थी। एक क्षण के लिए भी उनसे दूर रहना नहीं चाहती थी। यहाँ तक कि रात में भी वह माँ के साथ रहना चाहती थी। माँ यह समझ नहीं पाती थीं कि उनकी बेटी क्या चाहती है? उसके साथ ऐसा क्यों हो रहा है?

'माँ... माँ... माँ, मेरी कुछ मदद करो।' –आँखों में आंसू लेकर वह स्कूल जाने के लिए तैयार हो गई, लेकिन माँ से अपने मन की बात कह नहीं पाई। स्कूल के लिए निकलने से पहले पलट कर उसने माँ की ओर देखा। माँ चाची से हँस-हँसकर कोई बात कर रही थीं। शायद बात सब्जी बनाने के किसी तरीके को लेकर थी। चाची भी हँस रही थीं। माँ और चाची को इस प्रकार हँसते हुए देखकर वह चुपचाप चल दी। चाची के सामने अपनी बात कैसे कहे? माँ भी तो कभी अकेली नहीं मिलतीं। अधिकतर उनके आसपास कोई न कोई रहता ही है। 'माँ, मैं जा रही हूँ। स्कूल का समय हो रहा है!' –कहकर वह गेट की ओर बढ़ गई।

'ठीक है बेटा। लंच बैग में रख दिया है, खाना जरूर लेना। कल वापस लेकर आई थी।' –माँ की आवाज थी, जिसे उसने सुना और बिना कुछ कहे गेट खोलकर कॉलेज की ओर चल पड़ी।

उसका कॉलेज घर से अधिक दूर नहीं है। कभी वह रिक्शा लेती है, कभी पैदल ही चली जाती है। आज वह पैदल ही चलने लगी। मार्ग में साथ पढ़ने वाली दो सहेलियाँ मिल गईं। उनसे बातें करते हुए वह घर की सारी बातें कुछ देर के लिए भूल गई और आगे बढ़ने लगी। दिन विद्यालय की कक्षाओं में व्यतीत हो गया। विद्यालय में वह मुस्कुराती रही, हँसती रही। पढ़ाई के साथ-साथ सहेलियों के संग गप्पें भी लड़ाई भी हुई। धीरे-धीरे दिन समाप्ति की ओर बढ़ गया। चार बजने वाले थे। विद्यालय में छुट्टी हो गई। विद्यालय की छुट्टी हुई और अब घर जाना होगा, यह सोचकर उसका मन घबराने लगा।

मन चाहे जितना घबराए, घर तो जाना ही होगा। घर की सोचकर मन और शरीर थका हुआ महसूस करने लगे। विद्यालय के गेट पर आकर उसने रिक्शा लिया और घर की ओर चल पड़ी। रिक्शे में बैठे-बैठे सोचने लगी कि काश! वह पैदल ही घर आ गई होती तो कुछ और समय कट जाता मार्ग में। रिक्शे से तो वह शीघ्र ही पहुँच जाएगी। पिछले लगभग एक वर्ष से वह घर से अधिक बाहर रहना चाहती है। घर में प्रवेश करते ही उसे घुटन होने लगती है। वह संयुक्त परिवार में रहती है। उसके मम्मी-पापा, उससे दो वर्ष छोटी बहन और तीन वर्ष का भाई, साथ में दादी, चाचा-चाची, लगभग उसकी उम्र का चाचा का बेटा और उससे छोटी उसकी बहन- सब एक साथ रहते हैं। दो वर्ष पूर्व दादा का निधन हो गया था। इतने बड़े परिवार में रहते हुए भी उसे अकेले घर की छत पर जाने में डर लगता है। अकेले अपने कमरे में डर लगता है। मम्मी किसी काम से कहीं चली जाती हैं, तब डर लगता है। ऐसी परिस्थितियों में वह दादी के पास जाकर बैठ जाती है, तब भी उसे अब डर लगने लगा है। ऐसा नहीं है कि वह भीरू या डरपोक है। उसे भूत-प्रेत से डर लगता है? नहीं, बिलकुल नहीं। उसे डर लगता है... उसे अपने शरीर से डर लगता है।

वह कैसे विस्मृत कर सकती है मार्च की वह शाम, जब वह माँ से बताकर कुछ देर के लिए छत पर गई थी। उसने अपनी छोटी बहन को भी साथ चलने को कहा था, लेकिन उसने अपना होमवर्क पूरा कर के आने कहा था, क्योंकि उसका होमवर्क पूरा नहीं हुआ था। मौसम थोड़ा गर्म होने लगा था। सुबह शाम की हवा में थोड़ी खुमारी घुलने लगी थी। वैसे भी मार्च का महीना उसे

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

बहुत पसंद है। बसंत के आगमन का संकेत हवाओं द्वारा मिलने लगता है। पुष्प, खुशबू और मंद गति से चलने वाली हवाएं इस माह को सबसे अलग और खूबसूरत महीना बना देती हैं। ऐसे में वह शाम को थोड़ी देर के लिए छत पर जाना पसंद करती है। वह छत पर टहलते हुए अपनी छोटी बहन की प्रतीक्षा कर रही थी कि चाचा का बेटा पंकज छत पर आ गया।

'किसकी प्रतीक्षा कर रही हो? मैं तो आ गया।' -कहते हुए उसने उसके हाथ पकड़ लिए।

सहसा उसे सामने देखकर वह चौंक गई। उसके हाथ पकड़ने के ढंग से उसके मन में घृणा का एक भभका-सा उठा। उसने झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया। वह समझ गई कि चचेरे भाई की नीयत उसके प्रति अच्छी नहीं है। वह उसे बहन नहीं, बल्कि एक देह या मांस का टुकड़ा समझ रहा है, जिसका केवल उपयोग किया जा सकता है। उसके नेत्रों में यही भाव थे। वह पीछे हट गई और नीचे जाने के लिए सीढ़ियों की ओर बढ़ने लगी।

'सॉरी नीला, ये बात किसी से कहना मत, प्लीज!' -कहकर वह उससे पहले ही नीचे उतर गया।

वह घबराई हुई छत पर रुक गई। कुछ ही देर में उसकी छोटी बहन आ गई।

'क्या हुआ दीदी, तुम्हारे चेहरे का रंग सफेद क्यों हो गया है? क्या कोई बंदर छत पर आ गया था?' -कहकर उसकी बहन हँसने लगी।

'अरे नहीं! कुछ नहीं।' -उसने कहा। वह जानती थी कि छत पर कभी-कभी बंदर आते हैं और उसे बंदरों से बहुत डर लगता है।

नीरजा हेमेन्द्र हिंदी साहित्य की प्रख्यात लेखिका और शिक्षिका हैं। उन्होंने एम. ए. (हिंदी साहित्य) और बी.एड. किया है। उनकी रचनाएँ कहानी, कविता, उपन्यास और आत्मकथा में हैं। उन्हें कई साहित्यिक पुरस्कार मिल चुके हैं। वे लखनऊ में शिक्षिका हैं और उनकी लेखनी हिंदी साहित्य में समृद्ध योगदान देती है।

संपर्कः 510/75, न्यू हैदराबाद, लखनऊ- 226007

उस दिन छत पर उसकी बहन ही बोलती रही। वह चुप रही। चुप क्यों न रहती? वह तो उस समय पंकज के व्यवहार से आहत थी। मन व्याकुल था। अपनी बात किससे कहे? अपनी छोटी बहन से तो नहीं कह सकती। उसकी बहन छोटी है। वह क्या समझेगी इन बातों को? नासमझी में कहीं उसने माँ से कह दिया तो माँ उसे ही गलत न समझ बैठेंगी। माँ से वह ही बताना चाहती है, लेकिन सही अवसर की तलाश में है। और वह सही अवसर की तलाश करती रही।

पंकज यहीं तक नहीं रुका। पंकज उसे जब भी अकेले देखता, कभी उसके कंधे के पास, तो कभी उसकी कमर के नीचे हाथ रखकर अजीब-सी क्रूर मुस्कराहट के साथ मुस्कुरा पड़ता। अब तो हालत यह हो गई है कि वह घर में किसी न किसी के साथ रहना चाहती है। कभी अकेले पड़ जाने पर, जैसे कि रसोई, अपना कमरा, आँगन, छत, गैलरी आदि में तो घबरा कर किसी के पास भाग कर आ जाती है। उसे डर लगता है। चाची का बेटा जब भी घर में रहता है, अवसर पाते ही उसके नेत्रों को उसे घूरते पाती है। इस घर से, इन खोखले रिश्तों से उसे ऊब और घृणा होने लगी है। वह किस पर विश्वास करे और किस पर न करे, यह समझ नहीं पा रही है। उलझन की स्थिति में जी रही है।

इस वर्ष उसकी इंटरमीडिएट की बोर्ड परीक्षा है। वह मन लगाकर पढ़ना चाहती है। पढ़ भी रही है। लेकिन मन लगाकर अकेले पढ़ना हो तो कहाँ पढ़े? वह संयुक्त परिवार में रह रही है। संयुक्त परिवार सुरक्षा की दृष्टि से अच्छा माना जाता है। उसके घर में संयुक्त परिवार की अवधारणा ही बदल गई है। संयुक्त परिवार का अर्थ यहाँ तो यह हो गया है कि चचेरी बहन सुरक्षित नहीं है। डरते-डरते स्वयं को पंकज की कुदृष्टि से बचाने का प्रयास करते हुए उसने इंटरमीडिएट की परीक्षा दी।

अब ग्रीष्मावकाश प्रारंभ हो गया है। अवकाश में जहाँ सभी बच्चे खुश होते हैं, वहाँ वह डरी-सहमी-सी अपने अवकाश के दिन व्यतीत करने लगी है। गर्मियों की शाम को जब भी छत पर आती, तो अपनी बहन के साथ आती। थोड़ी देर रुकने के बाद उसी के साथ नीचे चली जाती। घर एक था, सबके लिए खुला था। कोई भी कहीं आ-जा सकता था। अतः वह अधिकतर समय माँ के साथ, जब तक माँ रसोई में रहतीं, वह रसोई में व्यतीत करती।

माँ कहतीं, 'गर्मी में मेरे साथ यहाँ क्या कर रही हो? रसोई का जो काम तुम्हें करना था, वह तुम कर चुकी हो। अब अपने कमरे में जाकर हवा में बैठो।'

'मैं अपने कमरे में नहीं जाऊंगी। जब छोटी आ जाएगी तभी कमरे में जाऊंगी।' -उसने माँ से कहा।

'छोटी अपनी फ्रेंड के घर गई है। न जाने कितना समय लगे उसे आने में, तब तक क्या तुम यहीं गर्मी में रहोगी?' -माँ ने कहा।

'हाँ!' -उसने थोड़े गुस्से वाले लहजे में कहा।

'इस लड़की न जाने क्या हो गया है। हँसना, मुस्कराना तो दूर, न जाने क्यों गुमसुम मेरे पीछे चलती रहती है। वहीं उसकी छोटी बहन है, जो घर में दिन भर हँसती-चहकती रहती है...।' -माँ ने बड़बड़ाते हुए कहा।

'क्या हुआ? क्यों डाँट रही हो बिटिया को?' -माँ की आवाज सुनकर दादी अपने कमरे से निकलकर रसोई की ओर आ रही थीं।

'कुछ नहीं हुआ। भोजन तैयार हो गया है। मंजुला (चाची का नाम) से कह दीजिए कि रोटियाँ सेंककर सबके लिए भोजन निकाल दे।' -माँ ने दादी से कहा।

'हाँ दीदी, मैं आ गई। आप जाकर अपने कमरे में हवा में बैठ जाइए, मैं कर लूँगी।' -माँ की आवाज सुनकर चाची ने कहा।

पसीना पोंछती हुई माँ अपने कमरे की ओर चल दीं। माँ के साथ वह भी उनके कमरे में आ गई।

माँ के कमरे में कुर्सी पर बैठकर वह अपनी मनपसंद पत्रिका पढ़ने लगी। माँ आराम की मुद्रा में पलंग पर लेट गईं।

'दीदी, भोजन लगा रही हूँ। रोटियाँ सिक गई हैं।' -कुछ ही देर में चाची ने रसोई से माँ को आवाज लगाते हुए कहा।

'ठीक है, आ रही हूँ।' -कहते हुए माँ उठीं और डायनिंग रूम का पंखा चला कर डायनिंग टेबल पर बैठ गईं। छोटी बहन और मैं एक साथ बैठ गई। पापा और चाचा कार्यालय में थे। मेरा भाई मम्मी के पास बैठ गया।

'पंकज, भोजन करने आओ!' -मेरी मम्मी ने चाची के उस गंदे लड़के को भोजन के लिए बुलाया।

मम्मी का इस प्रकार उसे बुलाना मुझे बहुत बुरा लगा, लेकिन मैं कर भी क्या सकती थी? मम्मी को उसके बारे में मैंने कुछ बताया भी नहीं था। वह तो उसकी गंदी हरकतों से अनभिज्ञ थीं। वह आकर मेरे भाई के पास वाली खाली कुर्सी पर बैठ गया।

'गर्मी लग रही है क्या नीला? शाम को हवा चलती है, छत पर चली जाना।' -उसने कहा। उसके मुँह से अपना नाम सुनना मुझे बहुत बुरा लगता है।

उसने पंकज की ओर देखा। उसके चेहरे से शरारत टपक रही थी। वह सोच रही थी कि उसकी मम्मी उसे अपने बेटे-सा प्यार करती हैं और वह उनकी बेटी पर बुरी दृष्टि रखता है।

इस समय उसकी छत पर जाने की बात सुनकर वह डर गई। सबके सामने उसे ये बातें करने का उसका साहस देखकर वह परेशान हो रही थी। कब तक ऐसा चलता रहेगा? किसी दिन उसका साहस अधिक बढ़ गया तो क्या होगा? घर का वातावरण उस दिन भी तो अच्छा था। मम्मी-बाबूजी और बच्चे एक साथ थे। परन्तु वह एकांत की तलाश में थी। कहीं उसे सुकून मिलता तो ठीक। सुकून नहीं मिलता, तो कम से कम डर तो कम होता। घर में उसे अकेले रहना अच्छा नहीं लगता। यहाँ से उसे भागना है। कहाँ? यह भी पता नहीं।

घर का वातावरण उस दिन भी खराब होगा। रिश्ते उस दिन भी टूटेंगे, जब वह पंकज के बारे में मम्मी-पापा को बताएगी। चाचा-चाची शायद विश्वास ही न करें कि उनका पुत्र अपनी बहनों के साथ चरित्रहीनता की सीमाएं तोड़ना चाहता है। वे उसे दोषी न मानेंगे। पंकज की शिकायत माता-पिता से करने पर यदि ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं, तो वह अकेले इन सबका सामना कैसे कर पाएगी? कैसे? कोई भी तो उन क्षणों का साक्षी नहीं है। वह कैसे बताएगी कि उसका चचेरा भाई अकेले में बुरी नीयत से उसे छूता रहता है? उसके पास प्रमाण क्या है? तो क्या वह प्रमाण मिलने का इंतजार करे? प्रमाण लाए भी तो कैसे? इन्हीं अनेक प्रश्नों में उलझी उसके ग्रीष्मावकाश के दिन व्यतीत हो रहे थे। दिन व्यतीत ही नहीं हो रहे थे, बल्कि वह पंकज की छेड़खानी का शिकार भी हो रही थी। उस दिन की बात है जब वह दोपहर अपने कमरे में थी। साथ में उसकी छोटी बहन भी थी। न जाने कब उसे नींद आ गई। अपने सीने पर

किसी के हाथ का स्पर्श पाकर वह चौंक कर जाग गई। पंकज सामने खड़ा मुस्कुरा रहा था। उसकी छोटी बहन कमरे में नहीं थी।

'यह क्या बद्तमीजी है?' –वह जोर से चिल्लाई। उसकी आवाज इतनी तीव्र थी कि माँ और चाची ने भी अवश्य सुना होगा।

'क्या हुआ दीदी?' –उसकी आवाज सुनकर उसकी छोटी बहन कमरे में आ गई।

'तुम कहाँ चली गई थी? मुझे अकेला छोड़ क्यों गई?' –वह रोने लगी और पूरा शरीर पत्ते की तरह काँप रहा था। वह डरी हुई थी। यह सोच कर डरी हुई थी कि अब पूरे घर को पंकज की हरकतों का पता चल जाएगा और घर वाले उसे दोषी समझेंगे या पंकज को? वह असमंजस की स्थिति में थी और भयभीत थी। रोते हुए उसने उंगली से पंकज की ओर इशारा किया।

'मत रोओ दीदी, मैं सब समझ गई। कमरे में आते समय मैंने इसकी करतूतें देख ली थीं।' –बहन उसके पास आकर बोली।

दोनों बहनों को एक साथ और स्वयं को रंगे हाथों पकड़े देख पंकज वहाँ से जाने लगा।

'अब मैं इससे नहीं डरूँगी। अपना सम्मान गँवाकर घर का सम्मान बचाती रहूँगी। खोखले रिश्तों को बचाती रहूँगी। कब तक? और क्यों? चाचा-चाची का दायित्व नहीं है कि वे अपने पुत्र को नैतिकता और रिश्तों की पवित्रता की सीख दें। वह नहीं मान सकती कि अपनी बहनों के प्रति पंकज की इन घटिया हरकतों से चाची अनभिज्ञ होंगी।

'तुम इस कमरे से बाहर अभी कहीं नहीं जाओगे। मम्मी और चाची को यहाँ आने दो।' –उसने कड़क शब्दों में पंकज से कहा।

'तुम सो रही थी, इसलिए मैं नहाने चली गई थी।' –उसकी बहन भी घबराई हुई थी।

'परेशान न होओ। ठीक किया, काम से चली गई।' –उसने बहन से कहा।

'मम्मी... चाची... कमरे में आओ।' –उसने कड़क स्वर में मम्मी को आवाज दी। उसके बुलाने तक मम्मी कमरे में आ चुकी थीं। उनके पीछे चाची भी थीं।

'क्या हुआ बेटा?' –मम्मी ने पूछा।

'मुझसे नहीं, पंकज से पूछो। मैं सो रही थी तो वह मेरे कमरे में अकेला क्या कर रहा था?' -उसने तेज और तीखे लहजे में कहा।

'क्या? पंकज? ये क्या कह रही हो बेटा?' -उसकी माँ आश्चर्यचकित होकर पंकज की ओर देख रही थीं। उन्हें पंकज की इस हरकत पर विश्वास नहीं हो रहा था।

'नहीं ताईजी, मैंने कुछ नहीं किया। मैं झूठ क्यों बोलूँगा? मैं इसे बहन मानता हूँ।' -हड़बड़ाया हुआ पंकज अपनी माँ की ओर बार-बार देख रहा था।

'बेटा, मैंने तुम्हें अपने बेटे से कम स्नेह नहीं दिया।' -उसकी माँ की आँखों से आंसू छलक पड़े।

'ताईजी, आप अपनी लड़की का पक्ष ले रही हैं। वह तिल का ताड़ बना रही है, झूठ बोल रही है।' -अपनी माँ को चुप देख पंकज के स्वर तीखे हो गए थे।

कमरे में इतनी बातचीत के बीच चाची अभी तक चुप थीं। उन्हें आशंका हुई कि इस घटना के बाद घर के आपसी रिश्तों में दरार आना निश्चित है।

'घर में मेरी बेटियों के साथ ये सब...?' -उसकी माँ पंकज की ओर देखते हुए बोलीं।

इतनी देर में... तड़ाक की आवाज आई। चाची का एक जोरदार थप्पड़ पंकज के गाल पर पड़ा, 'बहन जैसी नहीं, ये तुम्हारी बहन है। और वह झूठ नहीं बोल रही है। झूठ तुम बोल रहे हो। कोई भी लड़की अपना सम्मान दांव पर लगाकर झूठ नहीं बोलती। झूठ बोलने के कई और बहाने हो सकते हैं, किंतु ऐसा बहाना झूठा नहीं होता। ये सब बच्चे मेरे सामने पले बढ़े हैं। इस घर का कोई बच्चा यह न समझे कि उसकी गलतियों और अच्छाइयों पर हमारी नजर नहीं है। मुझे तुम पर पहले से शक था, लेकिन मैं नीला के साहस की प्रतीक्षा कर रही थी।'

अपनी आशा के विपरीत चाची का व्यवहार देखकर वह आश्चर्यचकित थी। उसके हृदय पर रखा एक बड़ा पत्थर जैसे उतर गया।

'आज से तुम बाहर के कमरे में रहोगे। बिना पूछे घर के अंदर प्रवेश नहीं करोगे।' चाची ने सख्त होकर पंकज से कहा।

'सॉरी मम्मी, सॉरी। अब कभी शिकायत का अवसर नहीं दूँगा।' -पंकज का डरा हुआ चेहरा देखने लायक था।

'सहरी? क्या तुम इसे छोटी गलती समझ रहे हो? नीला के मन पर अपने घर, अपने भाई, अपने सगे रिश्तों के प्रति विश्वास टूटने का जो प्रभाव पड़ा होगा, उसका तुम अनुमान नहीं लगा सकते। वह पूरी उम्र अब किसी पुरुष पर विश्वास नहीं करेगी, हो सकता है अपने पिता पर भी नहीं।' -कहकर चाची ने पंकज के दूसरे गाल पर एक और थप्पड़ मारा।

शर्मिंदा होकर पंकज वहीं खड़ा था। उसकी दृष्टि नीचे झुकी थी।

'दीदी... और नीला बेटा, आप दोनों... ये बात यहीं खत्म कर दो। पंकज दोबारा यह गलती नहीं करेगा। यह बात उसके ताऊजी और पापा को न पता चले। जिस दिन उन्हें यह पता चलेगा, उस दिन यह घर टूट जाएगा। मैं नहीं चाहती कि यह घर टूटे और हम सबका आपस का प्रेम खत्म हो। और हाँ, नीला बेटा, यदि वह पुनः ऐसा करता है तो तुम निःसंकोच मुझे और दीदी को बताना। उस दिन पंकज के लिए इस घर में कोई स्थान नहीं रहेगा।' -कहकर चाची रो पड़ीं।

'पंकज, यह अंतिम चेतावनी है। अब तुम अपने कमरे में जाकर पढ़ाई-लिखाई करो।' -चाची ने पंकज को वहाँ से जाने के लिए कहा। पंकज वहाँ से चला गया।

'तुम बेफिक्र होकर अपनी पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान दो। जीवन में शिक्षा ही काम आएगी।' -चाची ने उसकी पीठ पर स्नेह भरा हाथ रखते हुए कहा।

चाची चली गईं। छोटी बहन और माँ उसके साथ कमरे में थीं। वह मम्मी के कंधे पर सिर रखकर सिसकने लगी।

'चुप हो जाओ मेरी बच्ची, तुमने आज बहुत अच्छा और साहसिक काम किया है।' -मम्मी ने कहा।

हाँ, कदाचित् वह यह साहस भरा कदम पहले उठा पाती। प्रत्येक लड़की को घरेलू हिंसा और अपनों द्वारा अपने ही घर में किए जा रहे शारीरिक शोषण के विरुद्ध पहली बार में ही समय रहते साहसिक कदम उठाना चाहिए, न कि तब जब पानी सिर के ऊपर निकल जाए।

मम्मी के कंधे पर आज जो अद्भुत सुकून अनुभव कर रही थी, वह उसे अपने जीवन में उतार लेना चाहती थी।

कहानी

महाप्रयाण

• महेश शर्मा

यह कहानी एक पुत्र के दृष्टिकोण से उसकी माँ के अंतिम दिनों, उनके स्वास्थ्य के धीरे-धीरे बिगड़ने, और अंततः उनके निधन की भावुक और मार्मिक घटना को दर्शाती है। माँ की नाजुक सेहत, परिवार के सदस्यों का साथ, माँ की अंतिम इच्छाएँ और उनका सम्मान, तथा पुत्र का अपने कर्तव्य और प्रेम के प्रति समर्पण कहानी का मुख्य विषय है। अंत में माँ के अंतिम संस्कार तक की पूरी यात्रा, उनके प्रति श्रद्धा और श्रद्धांजलि के साथ प्रस्तुत की गई है। यह कहानी परिवार, संवेदना और मृत्यु के स्वाभाविक चक्र की सजीव अभिव्यक्ति है।

अचानक मोबाइल फिर बज उठा। अभी कुछ ही देर पहले साले साहब से बात हुई थी- इंदौर जाना है, भतीजी के लिए लड़का देखने। मैंने तय कर लिया था कि कार्यालय से तीन बजे निकलूँगा और देर रात तक लौट आऊँगा।

फोन की ओर देखा। गाँव से बड़े भाई के बेटे का कॉल था, 'काका साब, दादी से बात करो।'

दादी, यानी मेरी माँ। उधर से बेहद धीमी और कमजोर आवाज आई, 'तू कहाँ है दीपू...? म्हारी तबीयत बहुत खराब है... डाक्टर के बतायो है, तू जल्दी से आ...।'

मैं चौंक गया। यद्यपि मुझे मालूम था कि माँ की तबीयत कुछ खराब है। अभी आठ दिन पहले ही तो बड़े भाई के घर गई थीं। मैंने माँ को जल्द आने का आश्वासन दिया और बड़े भाई से बात की। उन्होंने बताया कि दो दिन से बुखार है, कमजोरी भी बहुत हो गई है। डाक्टर को दिखाना होगा। मैंने उन्हें बता दिया कि इंदौर जा रहा हूँ, एक आवश्यक काम निपटा कर रात तक लौट आऊँगा। यह भी तय कर लिया कि लौटते वक्त माँ को अपने साथ ले आऊँगा और आवश्यकता पड़ी तो अगले दिन डाक्टर से भी मिलवा देंगे।

मैं और मेरी पत्नी तीन बजते ही इंदौर के लिए निकल चुके थे। इंदौर पहुँचते-पहुँचते फिर से भाई का फोन आया, 'दीपू, माँ बहुत परेशान कर रही है। तू जल्दी आ जा।'

मैंने उन्हें ढांढस बंधाया- 'दो घंटे में पहुँचता हूँ।'

हालांकि मुझे पता था कि तीन-चार घंटे तो लग ही जाएंगे।

इंदौर पहुँचते ही साले साहब को जल्दी काम निपटाने को कहा। माँ की हालत के बारे में उन्हें बताया। उन्होंने भी गंभीरता समझी और यात्रा में कोई विलंब न करते हुए हमें गंतव्य तक शीघ्र पहुँचा दिया।

करीब दो घंटे बाद हम लड़केवालों के घर पहुँचे और बातचीत आरंभ हुई। अभी मैं लड़के के पिता से जान-पहचान ही कर रहा था कि फिर मोबाइल बज उठा। माँ का ही कॉल था, 'कई पैदल आई रियो है...? कितनी देर लगैगी. ..? मैं मर री हूँ... थारो तो कोई पतो ही नीं...'

माँ की शुद्ध मालवी में मिली डॉट ने हँसी और पीड़ा दोनों का संचार किया।

'नहीं माँ, मैं आ रहा हूँ... एक घंटे में पहुँच रहा हूँ।' -यह कहते हुए मेरा मन विचलित हो गया। मैं जानता था कि अभी भी घर पहुँचने में तीन घंटे लगेंगे। झूठ बोलकर माँ को तसल्ली तो दे दी थी, पर आत्मा भीतर से ग्लानिवश कांप रही थी। हमने जल्दबाजी में नाश्ता समाप्त किया, लड़केवालों से विदा ली और बाहर आ गए। एक और घर जाना तय था, पर अब कुछ भी जरूरी नहीं लग रहा था। मैंने साले साहब से कहा, 'अब सीधे घर चलते हैं।'

उन्होंने कहा, 'आप गाड़ी में बैठिए, मैं चलाता हूँ।'

हमने लौटना प्रारंभ किया ही था कि फिर फोन आया। बड़े भाई थे, 'दीपू, जल्दी आ जा यार... माँ बहुत बेचैन है।'

मुझे आश्चर्य हुआ- पूरा परिवार वहाँ मौजूद है, फिर भी माँ सिर्फ मेरा ही इंतजार क्यों कर रही है? मैंने कहा, 'भाई साहब, माँ को लेकर अस्पताल चलिए। मैं पहुँच ही रहा हूँ।'

पर भाई बोले, 'माँ कहती है, मैं सिर्फ दीपू के साथ ही जाऊँगी। तू काम छोड़ कर आ जा।'

मैं चुप हो गया, फिर एक हल्की सी मुस्कान तैर गई मन में। यह आश्चर्य से ज्यादा गर्व की बात थी कि कोई है, जो मुझे सबसे ज्यादा चाहता है, मुझ पर सबसे ज्यादा विश्वास करता है।

मैंने भाई को बताया कि हम निकल चुके हैं और दो घंटे में पहुँच रहे हैं। तभी उधर से माँ की आवाज आई, 'मुझे बात करने दे...' और फिर मोबाइल हाथ में लेते ही माँ ने फिर डॉट लगाई, 'कई मरी जाऊँ तब आयगो?'

मैंने माँ को फिर आश्वासन दिया और साले साहब तेजी से गाड़ी दौड़ाते रहे।

मेरी माँ... जिसे मैंने ईश्वर से पहले अपने दिल में स्थान दिया है, जो मेरे लिए श्रद्धा और भक्ति की प्रतिमूर्ति रही है... वह आज पूरे परिवार में सिर्फ मुझे पुकार रही थी। और मैं, यहाँ अपने ससुराल के एक सामाजिक कार्य में व्यस्त था। मैं गाड़ी की पिछली सीट पर चुप बैठा, अपने विचारों में डूब गया। बीते वर्षों की स्मृतियां किसी चलचित्र की भांति आँखों के सामने घूमने लगीं।

मुझे अपना बचपन याद आया। हालांकि ऐसा कुछ विशेष नहीं था जिससे लगे कि मैं माँ का सबसे लाड़ला बेटा था। हम सात भाई-बहन थे, और माता-पिता हम सबको समान रूप से चाहते थे। लेकिन समय बदला। बड़े भाइयों के व्यवसाय और नौकरी शुरू होते ही पिता का कारोबार धीरे-धीरे मंद पड़ने लगा। शिक्षा पूरी करते-करते घर की आय घट चुकी थी। पिता जो कभी आत्मविश्वास से भरपूर, आर्थिक रूप से सक्षम और निर्णायक हुआ करते थे, अब धीरे-धीरे समझौतावादी और तटस्थ हो चले थे। यह मनुष्य की प्रकृति है- जब तक वह सक्षम रहता है, उसे किसी सहारे की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन जब शरीर कमजोर और मन असहाय होता है, तब वह अपने आसपास ऐसे लोगों को ढूँढता है, जो विश्वसनीय हों, समर्पित हों। और ऐसे समय में, जिन्होंने जीवन में उससे कुछ पाया हो, उनका यह पवित्र कर्तव्य बनता है कि वे उसकी अपेक्षाओं को सम्मान दें। हमारे परिवार में इस भावना का पालन हो रहा था।

उस समय मैं बैंक मैनेजर था। आर्थिक रूप से सक्षम और वैचारिक रूप से इस मत का समर्थक कि बच्चों को अपने माता-पिता की सेवा पूरे मनोयोग से करनी चाहिए। माँ मुझसे विशेष स्नेह रखती थीं। वे चाहती थीं कि मेरे साथ ही रहें। लेकिन पिता को गाँव से विशेष लगाव था। चंबल नदी के किनारे उनका प्रिय शिव मंदिर था, जहाँ वे प्रतिदिन जाते थे। माँ चाहती थीं कि मेरे साथ ही रहें, लेकिन पिता की जिद और घर की स्मृति उन्हें बार-बार गाँव खींच लाती थी। इस कारण वे स्थायी रूप से मेरे साथ नहीं रह सकीं। फिर भी, हर चार-छह महीने में माँ-पिता दोनों मेरे यहाँ आ जाया करते थे और बीस-पच्चीस दिन तक रहते थे।

समय धीरे-धीरे बीतता गया। पिता का स्वास्थ्य लगातार गिरता गया। उन्हें इंदौर ले जाया गया, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। कुछ ही दिनों में हमने पिता को खो दिया। पिता की मृत्यु के बाद माँ कुछ समय गाँव में रहने लगे भाई के पास रहने लगीं। और बीच-बीच में कभी बडे भाई के यहाँ और कभी मेरे यहाँ आ जाती थी। चूंकि अब माँ को वापस जाने की जल्दी नहीं होती थी, माँ मेरे साथ कुछ ज्यादा समय रहने लगी और उसका मेरे प्रति भौतिक और आत्मिक रूप से भी मोह बढ़ने लगा जो मेरे सौभाग्य का सूचक था। इसे मैं अपने लिए स्वर्णिम अवसर मानता था कि मैं अपनी माँ से निकट हूँ और मुझे माँ का ध्यान रख पाने का, उसकी सेवा कर पाने का या उसकी इच्छाओं को जानकर उन्हें पूरा करने का अवसर मिल रहा था। शारीरिक रूप से कमजोर होती माँ अब प्रयास करती थी कि उसका ज्यादा समय मेरे पास रहते हुए बीते और मैं भी यही चाहता था कि माँ मेरे पास ज्यादा रहे। मैं इस बात में भाग्यशाली भी था कि पत्नी भी इसमें सहमत और सहायक थी। माँ के मेरे साथ रहने के दौरान हमने माँ के कई रूप देखे, कई कई सुख दुख के क्षण आये। माँ से अंतरंगता गहन हुई। हालांकि 'अपनी माँ से अंतरंगता बढना', यह कहना विचित्र माना जा सकता है, क्योकि माँ-बेटे का रिश्ता तो दुनिया का सबसे सहज सबसे मजबूत सबसे पवित्र और महान होते हुए ऐसी किसी भी परिभाषा से बिल्कुल विमुक्त ही माना जायेगा। लेकिन मेरा संकेत एक अन्य भौतिक और व्यावहारिक बिंदु की और है- वो यह कि रिश्ता कोई भी हो कितना भी महान उच्चतम और मूल्यांकन से परे हो लेकिन उसमे सजीवता, आकर्षण और मोहपाश तब तक जागृत नही रहेगा, जब तक उसमे निरंतर संपर्क, लगातार प्रकट होता आत्मीयबोध और एक-दूसरे के प्रति बिना लाग-लपेट के साफ स्वच्छ स्नेहपुर्ण और सम्मानजनक लगाव ना हो।

मेरे वैचारिक सफर को अचानक झटका लगा। गाड़ी मेरे गृहग्राम की सीमा में प्रवेश कर रही थी। अब तक पिछले एक घंटे में चार-पाँच बार फोन आ चुके थे। भाई साहब का कहना था कि तबीयत लगातार बिगड़ रही है, और माँ लगातार मुझे याद कर रही है। इस दौरान माँ से भी मेरी बात कराई गई। माँ कमजोर और अस्पष्ट शब्दों में मुझे डॉट पिलाती रही।

गाड़ी घर के आगे रुकी। सभी बाहर बेचैनी से मेरा इंतजार कर रहे थे। मैंने तत्काल माँ को गाड़ी की पिछली सीट पर बिठाया और श्रीमती और मैं भी पीछे उसके आसपास बैठ गये। भाई साहब और भतीजा राजू आगे बैठे। और हम चल पड़े मेरे वर्तमान निवास की ओर जो गृहग्राम से। 25-30 किलोमीटर

दूर होकर एक जिला स्तरीय चिकित्सा सुविधाओं से युक्त मध्यम किस्म का शहर था।

पिछली सीट पर मेरे नजदीक बैठी माँ मुझे देखकर रो पड़ी, 'कित्ती देर कर दी तुने आने में ? थारे कोई चिंता नहीं हुई म्हारी। म्हके कईं हुई जातो तो ?'

मैंने अब उसे सही कारण बताया कि मैं बहुत दूर गया था। खबर पाते ही चल पड़ा। लेकिन दूरी के कारण पहुँचने में देर लगी।

'अच्छा चल अब जल्दी म्हके डाक्टर के पास ले चल।' - माँ ने अपना हाथ मेरे हाथ पर रखते हुए कहा।

मैंने उसका हाथ अपने हाथों में लेते हुए सहलाते हुए उसे दिलासा दिया कि अभी अस्पताल पहुँचते हैं और सब ठीक हो जाएगा।

मैं लगातार माँ के चेहरे को देख रहा था। माँ बहुत अच्छी लग रही थी। वह आश्वस्त थी कि अब उसका बेटा उसके पास है, लेकिन उसके चेहरे पर कुछ सूजन भी आ रही थी। बहुत दुबली भी हो चुकी थी। उसकी त्वचा कई जगह से लटक रही थी। मैंने महसूस किया कि वह क्षीण हो रही है, उसकी शारीरिक शक्ति घटती जा रही है। उसके दोनों हाथ मेरे हाथों में थे। उसने अपना सिर मेरी और झुकाते हुए मेरे कंधे से टिका दिया। मैं बड़ी तेजी से भावुक होने लगा। माँ मेरा सहारा ले रही है। मुझे लगा जैसे उच्चतम आकाश या विशाल धरती जैसा कोई विराट व्यक्तित्व किसी नन्हें से तृण समान पौधे का सहारा ले रहा है।

मैंने अपना एक हाथ माँ के सिर के पीछे से घुमाकर उसके दूसरे कंधे पर रखते हुए उसे अपनी और खींच लिया। माँ और तिरछी होकर मेरी और झुक गई थी।

तभी अचानक माँ ने मेरी ओर देखा या यूं कहें कि मुझे मेरे परम सौभाग्य का एक अवसर उपहार में दे दिया। माँ बोली, 'दीपू! मैं थारी गोद में सो जाऊं थोडी देर ?'

मैंने तत्काल कुछ पैर फैलाते हुए उसे तिरछाकर अपनी गोद में सुला लिया। 65 वर्ष की उम्र लिए माँ का अशक्त शरीर मेरे हाथों पर टिका हुआ था। उसका उन्नत ललाट लिए सिर मेरी गोद में रखा आराम कर रहा था। मैं अभिभूत था। हतप्रभ था। मुझे लग रहा था- साक्षात ईश्वर अपने किसी भक्त, किसी सेवक की गोद में आराम कर रहा था। मैंने अपना एक हाथ माँ की पीठ पर और दूसरा हाथ उसके सिर पर रखते हुए उसे हल्के से थपथपाने का

उपक्रम किया। तीन-चार मिनट तक मुझे वह अनिर्वचनीय सुख लूटने का मौका मिला।

माँ इस मुद्रा में आराम से नहीं लेट पा रही थी। अब वह बोली, 'बेटा मुझे सीधा बिठा दे।'

मैंने उसे फिर सीधा बिठा दिया। वह फिर मेरे कंधे से अपना सिर टिका कर पूरे सुकून के साथ टिकी रही। मैं सौल्लास उस महान हस्ती को एकटक देख रहा था। ईश्वर की उस अनुपम कृति को देख रहा था जो आज से लगभग 50 साल पहले अपना बचपन, अपना घर-बार और अपने माता पिता को छोड़कर अपनी ससुराल आई थी। तब उसकी उम्र महज 13 वर्ष थी, और ससुराल में थे केवल ससुर और पति याने मेरे पिता। उस 13 वर्ष की उम्र से अपना वैवाहिक जीवन प्रारंभ करती हुई माँ कई उतार-चढ़ाव देखती सात बच्चों और पति को सम्हालती घर की सारी जिम्मेदारी निभाती हुई धीरे-धीरे उम्र की सीढ़ियां चढ़ती गई और आज उम्र की 60-65 वीं पायदान पर फिर 13 साल की अबोध बालिका सा व्यवहार करने लगी थी। मुझ अकिंचन, अपने साधारण से पुत्र की गोद में अपना सुकून-संतोष खोज रही थी। एक आश्वस्ति सी महसूस कर रही थी। और मैं मानो सम्पूर्ण पृथ्वी का कोमल-सा भार अपने कंधे और शरीर से उठाए स्वर्ग-सी अनुभूति में आकंठ गोते लगा रहा था।

मेरा निवास आने वाला था। माँ के दूसरी ओर बैठी मेरी जीवनसंगिनी मेरी पत्नी यह सब देख रही थी- चिंता और आश्चर्य के साथ। हम माँ बेटे का यह तमाशा कुछ विचित्र भी लग रहा होगा उसे। लेकिन वह भी माँ थी। वह समझ रही थी कि उसके पति यानी मेरे और माँ के बीच का यह सारा उपक्रम गूंगे के गुड़ के समान था, जिसके स्वाद की अनुभुति गुड़ खाने वाले गूंगे को ही हो सकती थी।

हम डाक्टर गुप्ता के क्लीनिक पर पहुंच चुके थे। माँ बहुत अशक्त थी उसे अंदर क्लिनिक में नहीं ले जाया जा सका। डाक्टर स्वयं गाड़ी में देखने आये और मरीज को देखते ही चिंता ग्रस्त हो गए। स्थिति गंभीर बताकर तत्काल हॉस्पिटल में भर्ती करने का कहा। आवश्यक दवाईयाँ लिखकर तत्काल ब्लड देने की बात बताई गई और यह भी कहा गया कि यह रात इनके लिए बहुत खतरों भरी है, कुछ कहा नहीं जा सकता- कुछ बुरा हो भी सकता है और नहीं भी।

हम गंभीर चिंताओं में डूब चुके थे, मन में आशंकाओं का साया गहराता जा रहा था। घर से निकलते समय न तो भाई साहब, न मैं, न कोई अन्य इस

बात को इतना गंभीर मामला समझ पाया था। परन्तु मेरे हृदय और मस्तिष्क में पश्चाताप की लहर उठने लगी थी- यदि आज माँ को कुछ हो गया तो मैं स्वयं को जीवन भर क्षमा नहीं कर सकूंगा। हम शीघ्र ही अस्पताल पहुँचे और उपचार आरंभ हो गया। कुछ समय बाद माँ के चेहरे पर राहत के अनुनाद झलकने लगे। भाई साहब और राजू वापस घर लौट जाना चाहते थे। उनके जाने के पश्चात अस्पताल में मैं, मेरी पत्नी और बच्चे ही माँ के साथ थे। मन में एक बेचैनी घर करने लगी, यह सोचकर कि रात्रि में कोई अप्रिय घटना हो सकती है। मैंने भाई साहब की ओर देखा और वे मेरी मनःस्थिति समझ गए। उन्होंने तुरंत हामी भरी। मैं वहीं रुक गया, और राजू को वापस भेज दिया। हमने तय किया कि दोनों भाई अस्पताल में माँ के साथ रहेंगे, तथा ललिता बच्चे लेकर घर पर रहेगी।

वह रात अत्यंत चिंताजनक थी। रक्तस्राव रोकने हेतु लगातार स्लाइन चढ़ाई जा रही थी। माँ कराहती हुई सोती-जागती रहीं। हम दोनों भाई कुर्सियों पर बैठे, माँ की स्थिति पर नजरें गड़े हुए थे। धीरे-धीरे भाई साहब भी आधे निद्रा में आंखें मूंद चुके थे। तभी अस्पताल के काउंटर से बुलावा आया- फाइल बनवाओ और कुछ राशि जमा करो। हम एक-दूसरे की ओर देखने लगे और निश्चय किया कि एक भाई वहीं रुके, जबकि दूसरा नीचे जाकर भर्ती की प्रक्रिया पूरी करे। भाई साहब नीचे काउंटर पर चले गए। माँ अब भी निंद्रित अवस्था में थीं। मेरा विचारों का प्रवाह फिर से अनवरत बहने लगा।

मैंने एक विचित्र तथ्य महसूस किया। जब माता-पिता के दो-तीन या चार संतान होते हैं, वे बड़े होकर आत्मनिर्भर हो जाते हैं, और माता-पिता अकाल और असहाय हो जाते हैं। तब एक व्यावहारिक प्रश्न उभरता है- माता-पिता कहां रहें? किसके साथ रहें? उनका समस्त खर्च कौन वहन करे? ऐसे अवसर गिने-चुने ही होते हैं, जब सभी संतान सहर्ष माता-पिता को अपने पास रखना चाहते हों या उनके लिए प्रतिस्पर्धा करें। अधिकतर यह होता है कि इस प्रश्न के समाधान में न केवल स्वभाव की भूमिका होती है, बल्कि विवाद, एक-दूसरे पर जिम्मेदारी टालने की प्रवृत्ति, सेवा और देखभाल की जिम्मेदारी को समयानुसार बांट लेने की सोच, या संपत्ति के बंटवारे के कारण भी उलझनें पैदा हो जाती हैं। लेकिन वही बच्चे जब जन्म लेते हैं, अपने बाल्यकाल में पूर्णतया असहाय और निर्भर होते हैं, तब वही माता-पिता बड़ी लगन, प्रेम और गंभीरता से उनका पालन-पोषण करते हैं। उस समय कोई ऐसा प्रश्न या विवाद नहीं होता, कोई बहस नहीं होती कि बच्चों को पालना या उनकी सेवा में बंटवारा

किया जाए। यह स्वाभाविक सिद्धांत है कि बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा, और वैवाहिक उत्तरदायित्वों की संपूर्ण जिम्मेदारी माता-पिता की होती है। और तो और, माता-पिता अपने द्वारा अर्जित संपत्ति को अपने अंतिम समय से पूर्व बच्चों में समान रूप से बांट देते हैं, और अपने असमर्थ और निर्बल काल में उन्हीं बच्चों पर आशा करते हैं कि वे उनकी देखभाल करेंगे। हमारे परिवार में भी पितृक संपत्ति के बंटवारे का ऐसा ही अवसर आया। मेरे हिस्से में हमारे पैतृक ग्राम में एक पुराना मकान आया, जिसे मैंने नवनिर्माण कर चार कमरे बना लिए। उन चारों कमरों में किराएदार थे। उल्लेखनीय यह कि हमारे चारों भाइयों के बीच पितृक संपत्ति का बंटवारा मात्र पंद्रह मिनट में शांतिपूर्ण तरीके से संपन्न हो गया।

एक दिन माँ ने चार कमरों वाले मकान के एक कमरे का किराया अपने पास रखने की इच्छा जाहिर की। मैंने हँसते हुए सहमति दी। मेरे मन में यह विचार आया कि मैं अपनी माँ को उसी संपत्ति के एक हिस्से के किराये के लिए अनुमति दे रहा हूँ जो उन्होंने मुझे विरासत में दी थी। माँ को आश्वस्त किया कि आवश्यकता पड़ने पर वे पूरे मकान का किराया भी ले सकती हैं, और इसके अतिरिक्त कोई भी सहायता चाहिए तो मैं तत्पर हूँ। यहीं से भारतीय परिवारवाद के गुण-अवगुण, उसकी महानता और जटिलताएं सामने आने लगती हैं। माँ-बाप जीवन की प्रारंभिक घड़ी से लेकर शादी-ब्याह तक बच्चे की सारी जिम्मेदारी बिना किसी कानूनी बाध्यता, लालच या संकोच के स्वीकार करते हैं। वे बच्चों को कभी ताना नहीं देते, न बंधन में बांधते हैं। परन्तु जब स्वयं वृद्धावस्था में पहुँच जाते हैं, तो बच्चों से अपने जीवन-यापन के लिए अनुरोध करना पड़ता है, कहीं-कहीं संघर्ष भी करना पड़ता है। क्या यह स्थिति करुणा और लज्जाजनक नहीं होनी चाहिए? माँ ने उस चार कमरों वाले मकान के एक कमरे का मासिक किराया अपने पास रखने की मंशा प्रकट की, जो उन्हीं की देन थी। मेरी सोच ने एक सकारात्मक मोड़ लिया- यह कैसा अद्भुत व्यवहार है? जब एक महान पक्ष, अर्थात् माता-पिता, अपने बहुमूल्य जीवन के वर्षों को बच्चों के लिए समर्पित कर देते हैं, अपनी इच्छाओं और सुविधाओं का त्याग करते हुए बच्चों को समर्थ बनाते हैं, और फिर अपने अंतिम समय में उसी संपत्ति के कुछ हिस्से की आवश्यकता के लिए बच्चों से आग्रह करते हैं। यह कौन सी मानव सभ्यता है? मैं गहन विचारों में डूब गया।

ऐसी ही विचारों की जटिलता में सोते-जागते सुबह हो गई। ललिता घर से चाय लेकर आई थी। दोपहर तक भाई साहब वापस चले गए थे। माँ के

स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ था। अगले तीन-चार दिन तक पूरा परिवार माँ से मिलने उनके स्वास्थ्य की जानकारी लेने आता रहा। माँ को अस्पताल में सात-आठ दिन रहना पड़ा। इस दौरान उनकी देखभाल के लिए मुख्यतः हम पति-पत्नी लगे रहे। कुछ-कभार तकलीफें और असुव्यवस्थाएं भी आईं, पर वे नगण्य थीं। किसी महान निधि की सुरक्षा के लिए स्वजन की असुविधाएं तो स्वीकार्य हैं। वे असुविधाएं उन पीढ़ियों की पीड़ा के सामने कुछ भी नहीं थीं, जिन्होंने हमारे लिए संघर्ष किया था। मेरा मानना है कि भाग्यशाली होते हैं वे, जिन्हें इस ऋण का एक भी अंश चुकाने का अवसर मिलता है। अंततः सात-आठ दिन बाद माँ को हम घर पर ले आए। अस्पताल में जब मैं और माँ अकेले होते तो वह कुछ अंतरंग बातें मुझसे साझा करतीं। हर तीसरे दिन, अनेक विषयों के मध्य, माँ का एक निश्चित अनुरोध भी जुड़ जाता था- अपने दो-तीन छोटे-छोटे सोने के आभूषणों के बंटवारे का सवाल। मैं मन ही मन मुस्कुराता, उस सरल-सा लेकिन गंभीर निर्देश में माँ के पुत्रों एवं परिवार के प्रति गहन स्नेह को भलीभांति समझते हुए।

घर लौटने के पश्चात भी माँ की तबीयत में कोई विशेष सुधार नहीं था। कमजोरी वैसी ही थी। यद्यपि उसे कोई तीव्र कष्ट नहीं होता था, परन्तु वह प्रायः गहरी निद्रा में डूबी रहती। प्रातःकाल लगभग नौ बजे तक सोती, दिन भर राम और बजरंगबली की प्रार्थना करती, हल्का-फुल्का भोजन ग्रहण करती, और पुनः विश्रांति में लीन हो जाती। सायंकाल चार बजे उठकर चाय के साथ बिस्किट या चिप्स ग्रहण करती, कुछ देर बैठती, फिर शाम का भोजन कर फिर सो जाती। यही उसके दिनचर्या का क्रम था।

अस्पताल से घर आने के तीन दिन बाद, माँ ने मुझसे एक विशेष आग्रह किया, 'बेटा, अब रात को मेरे सामने ही, इस हॉल में सोना। अपने कमरे में मत जाना। ललिता भी चाहे तो यहीं सो जाए।'

मैंने प्रारंभ में इसे उसकी भावुक इच्छा समझ, हल्के स्वर में लिया। रात बारह बजे तक उसके पास बैठा रहा, फिर अपने कमरे को चला गया।

प्रातःकाल माँ ने मुझे टोका, उलाहना दिया, 'यहाँ नहीं सोया तू?' -और दृढ़ता से कहा, 'अब से मैं हॉल में ही सोऊंगी।'

मैंने उसे आश्वस्त किया और हॉल में ही सोना आरंभ कर दिया।

यह अत्यंत सूक्ष्म सा आग्रह था, परंतु इसमें उसकी किसी अनहोनी की गहरी आशंका और मुझ पर अगाध विश्वास छिपा था। ऐसा पहले भी कई बार हो चुका था। बीते वर्षों में माँ का दो बार आँखों का ऑपरेशन हुआ था, एक

बार बाएं पैर की हड्डी टूटी, और एक बार दाहिने हाथ की। हर बार ऑपरेशन करवाया गया। मेरा सौभाग्य रहा कि वह इन विपत्तियों के समय मेरे साथ थी। इसी कारण मुझे सदा उसके निकट रहने का अवसर मिला। तब मैंने सरलता से यह समझ लिया था कि बुजुर्गों को खुश रखना, उन्हें संतुष्ट करना कोई असाध्य कार्य नहीं है। थोड़ा-सा पैसा, मात्र थोड़ा-सा समय, उनके समीप बैठना- उनकी प्रशंसा करना, उनके पूर्व के कार्यों का सकारात्मक उल्लेख करना, और उनकी छोटी-छोटी आवश्यकताओं को समय पर पूरा करना, जो प्रायः आर्थिक दृष्टि से नगण्य होती हैं- यही उनकी समस्त अपेक्षा होती है। और इसके एवज में हमें प्राप्त होती हैं उनकी स्नेहपूर्ण आशीषों की अनमोल खान, दिन-रात उनके आशीर्वचन, उनके मुंह से निकला हुआ अपना तथा अपने बच्चों के लिए एक सकारात्मक एवं अनुकरणीय पाठ, जो हमारे भविष्य को सुरक्षित करता है। ऐसे व्यक्ति जो कुछ पैसा और थोड़ा समय श्रद्धा-भक्ति के साथ लगाकर इस सरल सेवा को निभाने में असमर्थ हों, उनसे बड़ा बुद्धिहीन और कौन होगा? मैं ईश्वर का हृदय से आभारी हूँ कि उसने मुझे सद्‌बुद्धि प्रदान की, जिसका सदुपयोग करते हुए मैंने एक भी अवसर न छोड़ा जब मुझे धरती पर निवास करने वाले इन देवताओं की सेवा का अवसर मिला हो या मेरी मुद्रा का कुछ अंश उनकी सुख-सुविधा में व्यय हुआ हो।

इस दौरान परिवार के बाहर रहने वाले सभी सदस्य- तीनों बहनें, सारे भतीजे-भांजे, मेरा पुत्र रवि, तथा अन्य सभी सदस्य मिलते रहे और वापस जाते रहे। माँ ने आग्रह करके मामीजी और छोटी बहू को यहीं रोक लिया, तथा परिवार के अन्य सदस्यों को समय-समय पर रुकने को कहती रही।

एक दिन दोपहर के समय, जो शायद अस्पताल से घर आने का आठवाँ दिन था, माँ ने सबको कहा, 'आज तुम सब, पूरे पच्चीस के पच्चीस, यहीं हॉल में मेरे आस-पास सोओ, नहीं तो पछताओगे।'

घर के लोग इसे हँसी-मजाक में लिए। शाम तक सब अपने-अपने घर लौट गए, केवल मामीजी और छोटी बहू पुष्पा यहीं रहीं।

चूंकि हॉल में माँ के साथ सोने के लिए दोनों उपस्थित थीं, अतः मैं अपने शयनकक्ष में सोया। माँ की सोने की अवधि प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। अगले दिन प्रातः आठ बजे हम हॉल में चाय पी रहे थे। मुझे अस्पताल जाना था, माँ के अस्पताल के खर्चे का बिल बनवाने, ताकि विभाग से पुनर्भुगतान प्राप्त कर सकूं। माँ यद्यपि सो रही थी, पर मेरी अस्पताल जाने की तैयारी देखकर बोली, 'अभी मत जा, मैं नहा लूँ, उसके बाद जाना।'

महेश शर्मा एक समर्पित और बहुआयामी साहित्यकार हैं जिनका लेखन विज्ञान, प्राकृतिक चिकित्सा और जीवन के विविध अनुभवों से गहराई से प्रभावित है। उनकी रचनाएं- लघुकथाओं से लेकर गीतों, गजलों और उपन्यासों तक- जीवन के सूक्ष्म पहलुओं को बड़ी संवेदनशीलता और सरल भाषा में प्रस्तुत करती हैं। उनका लेखन पाठकों को सोचने, समझने और जीवन के सूक्ष्म पक्षों से जुड़ने का अवसर प्रदान करता है।

संपर्क:: द्वारा डा. गौरव शर्मा 301 तीसरा माला टी जी हॉस्टल न्यू फेकल्टी 'खदरा' इरादत नगर नियर पक्का पूल, लखनऊ 226020

मैं वापस पलंग के पास सोफे पर बैठ गया, आधे घंटे तक वहीं रहा। माँ फिर गहरी नींद में डूब गई। मुझे लगा वह अभी और सोएगी, नहाने में समय लगेगा, तब तक मैं अस्पताल पहुँच जाऊंगा। मैंने अपनी पुत्री निक्की को साथ लिया और अस्पताल के लिए चल पड़ा।

अस्पताल से बिल बनवाकर लौटते समय लगभग नौ बजे थे। मुझे एक कार्यालयीय कार्य याद आया, सोचा आधे घंटे में निपटा लूं। किंतु निक्की साथ थी, अतः पुनः विचार किया- पहले घर जाकर निक्की को छोड़ दूं, फिर उस काम के लिए जाऊंगा। यह निर्णय शायद ईश्वर की कृपा का वरदान था, जिसने मुझे भविष्य में होने वाली एक गंभीर पीड़ा से बचा लिया।

हम सुबह के करीब नौ बजकर दस मिनट पर घर पहुंचे। मैंने निक्की को घर के बाहर ही उतार दिया और अपने काम के लिए लौटने का विचार किया। निक्की घर की ओर बढ़ी, मैंने गाड़ी स्टार्ट की, तभी भीतर से ललिता की जोरदार चीख सुनाई दी, 'माँजी! माँजी को क्या हो गया?'

उसके साथ ही मेरी बेटी निक्की की आवाज भी गूँज उठी, 'पापा, रुक जाओ!'

मैंने तुरन्त गाड़ी साइड स्टैंड पर लगाई और अंदर की ओर दौड़ा। वहां मैंने देखा कि ललिता और मामीजी के हाथों में माँ का मृतप्राय शरीर झूल रहा था। बिना समय गंवाए, मैंने माँ को दोनों बाहों में लिया, उसके गालों पर हाथ रखा। शरीर की उष्मा अभी भी महसूस हो रही थी, किंतु उसकी आँखें बंद

थीं। स्पष्ट था कि कुछ ही क्षण पहले माँ ने अपनी अंतिम सांस ली थी। उस गरमाहट में अब भी जीवन की झलक थी। मैं चीख पड़ा। बच्चों और महिलाओं की रोने की आवाजें चारों ओर फैल गईं। मैं दो मिनट तक स्तब्ध और हतप्रभ था, फिर अचानक अपनी आंसुओं को रोक न सका। लेकिन अब हमारे विलाप की कोई सुनने वाला न था। मामीजी आंसुओं से तर बोलीं, 'श्मशान के लिए माँ को बिस्तर पर नहीं, बल्कि जमीन पर लिटाना होगा।'

मैंने गौर किया कि माँ के शरीर पर केवल एक पेटीकोट था, जिसकी नाड़ा भी नहीं बांधी गई थी, और ऊपर एक छोटा सा तौलिया कंधे पर रखा था। मैंने उसके गाल, आँखें और पीठ छूकर देखा। सब कुछ अभी भी गर्म था। माँ का चेहरा अत्यंत शांत और प्रखर चमक रहा था। स्निग्ध त्वचा से पता चल रहा था कि वह अभी-अभी नहाई थी। ललिता ने बताया कि केवल 15-20 मिनट पहले माँ ने पूरी नींद ली थी और नहाने की इच्छा जताई थी। हमने समझाया था कि आज तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए नहाना उचित नहीं, लेकिन माँ अपनी जिद पर अड़ी रही। वह कभी भी बिना नहाए नहीं रहती थी। मामीजी और ललिता ने उन्हें उठाकर बाथरूम ले गए। माँ ने बजरंगबली के फोटो की ओर देखते हुए हँसते हुए कहा, 'आलकी की पालकी, जय कन्हैया लाल की।' फिर बाथरूम में माँ ने ललिता से कहा, 'मेरे सिर में साबुन लगाकर रगड़-रगड़ कर नहलाना, बदन पर भी साबुन लगाना।' दोनों ने मिलकर बहुत स्नेहपूर्वक और लगन से माँ को नहलाया, भजन गाते हुए भगवान का नाम लेते हुए उसका बदन पोछा और पेटीकोट (सही कहूँ तो उसे बदन पर डाला) पहनाया। फिर उसे उठा कर बैठक में वापस लाए। इस दौरान माँ ने ललिता को निरंतर अपनी सारी आशीषें और प्रेम प्रदान किया। बाथरूम से हॉल में आते हुए, बीच में हमारे छोटे से मंदिर में लगे हनुमान जी की फोटो को देखकर कहा, 'लंगुरिया हनुमान, म्हारी लाज रखना।' इतनी ही स्थिति में, पाँच मिनट पूर्व ही नहाए हुए, हनुमान जी की फोटो देखने के बाद, बिना बांधे पेटीकोट के माँ को पलंग पर बिठाने का प्रयास किया जा रहा था कि अचानक माँ का शरीर एक तरफ झुकने लगा, आँखें बंद हो गईं। तभी मेरी पत्नी चिल्लाई, 'माँजी! माँजी!' और उसी क्षण निक्की भी घर में घुसते हुए चिल्लाई, 'पापा! पापा!' मैं दौड़ा और अपने मृतप्राय माँ को अपने दोनों हाथों में थाम लिया। उस महान आत्मा के महाप्रयाण के ये अंतिम क्षण इतने सात्विक, शुद्ध और पवित्र थे कि मैं आश्चर्य और व्याकुलता में था। दुखी था, और साथ ही निराश भी, कि मैं उन अंतिम क्षणों का प्रत्यक्ष साक्षी

नहीं बन सका। मुझे लगता है, मेरी कुछ त्रुटि, कुछ अपराध रहा होगा, श्रद्धा-भक्ति में कमी रही होगी- ऐसा मैं स्वीकार करता हूँ।

हमने माँ के मृत शरीर को फर्श पर लिटाया- जो स्वच्छ, पवित्र, धवल एवं श्वेत प्रकाशमान था। उस समय मेरे मन में दो भाव जागे- पहला, मेरा सौभाग्य कि मैं समय पर घर आया और माँ के मृतप्राय शरीर को अपने हाथों में लेने का अवसर मिला। उसकी मृत देह की उष्मा, ऊर्जा और जीवंतता को महसूस किया। यदि मैं सीधे अस्पताल से अपने बैंक के कार्य के लिए निकल गया होता, तो शायद मैं घर पहुंच पाता आधे से एक घंटे बाद, और वह अफसोस जीवन भर नहीं भूल पाता। इस बात से मुझे सुकून मिला। परंतु दूसरी ओर यह सोच जीवित थी कि मुझे वह सौभाग्य नहीं मिला कि माँ मेरी बाहों में, मुझसे आँखें मिलाते हुए, कुछ कहते हुए या मौन में अपनी अंतिम यात्रा पर प्रस्थान करती। वह सौभाग्य मेरी पत्नी ललिता और मामीजी को मिला, जिनके हाथों माँ ने प्राण त्यागे। हाँ, मुझे उनके प्राण जाते शरीर की उष्मा मिली, वह ऊर्जा जो मैंने महसूस की- इतने से ही मैं लिए धन्य था। मैंने अपने जीवन में ऐसी शुद्ध, स्वच्छ, पावन और पवित्र मृत्यु कभी नहीं देखी। किसी मृत शरीर की इतनी सुवासित, सुगंधित अनुभूति भी पहली बार हुई। मैंने स्वयं को एक स्वर्गीय अनुभूति से परिपूर्ण पाया।

घर के सभी सदस्य रोते रहे। इसी बीच स्कूल से गौरव को बुला लिया गया। पड़ोसी पाटिल साहब ने पैतृक घर को सूचना दी, जहाँ से मेरे बड़े भाई गाड़ी लेकर निकल चुके थे। बड़े बेटे रवि को इंदौर से फोन लगा दिया गया था। पाटिल साहब ने मेरे अन्य रिश्तेदारों को भी सूचना दे दी थी। हमने माँ को कुछ वस्त्र पहनाकर व्यवस्थित किया। माँ की इच्छा थी कि अंतिम संस्कार गृहग्राम में ही हो, इसलिए वही तय हुआ। मुझे याद आया कि पिछले दस वर्षों में माँ ने कम से कम तीन-चार बार घोषणा की थी, ‘बेटा, मैं मरूँ तो तेरे घर, तेरे सामने, लेकिन मेरा अंतिम संस्कार मेरे पैतृक घर पर ही करना, जहाँ मैं अपने पति के साथ पहली बार आई थी, जो मेरा भी घर था।’ माँ का यह दृढ़ संकल्प, उनकी इच्छाशक्ति, उसी प्रकार पूर्ण हुआ।

भाई साहब आ चुके थे। हमने माँ को गाड़ी में सवार किया। सभी घर के सदस्य बैठे और चल पड़े। माँ की महाप्रयाण यात्रा मेरे घर से प्रारंभ हो चुकी थी, जो अंततः गृहग्राम, यानि माँ के पैतृक स्थान, चम्बल के किनारे जाकर अपनी पूर्णता को प्राप्त होने वाली थी।

कहानी

फोटोग्राफर

• संदीप शर्मा

भूकंप प्रभावित क्षेत्र में रिपोर्टिंग करने पहुँचे फोटो-पत्रकार भारत की मुलाकात एक बूढ़े बाबा, उनकी नातिन मुनिया और कुत्ते शेरू से होती है। तस्वीरों से पहचान पाने वाला भारत जब त्रासदी के असली चेहरों से मिलता है, तो भीतर से बदलने लगता है। राहत वितरण के बीच एक रात बाबा की हत्या हो जाती है- और इस बार, भारत कैमरा उठाने की हिम्मत नहीं कर पाता।

'**वा**ह भारत! कितनी करुणामयी छवियाँ तुमने खींची हैं! तुम तो मानो दुख-दर्द के रंगों को अपने लेंस में उतार लाने की कला में निपुण हो। देखो जरा इस चित्र को- यह वही है जो देश भर के लगभग हर अखबार के पहले पृष्ठ की शोभा बना है।'

संपादक के इन प्रशंसासूचक शब्दों को सुनकर भारत एक गहरी सांस लेकर अगली रिपोर्टिंग के लिए निकल पड़ा। इस बार का कार्य एक भयावह भूकम्प के बाद बेघर हुए लोगों के बीच प्रशासन द्वारा बाँटी जा रही राहत सामग्री का चित्रण और रिपोर्टिंग करना था। वह एक फ्रीलांसर फोटोग्राफर भी था- खींचे गए चित्र वह देश भर की बड़ी-छोटी पत्र-पत्रिकाओं को भेजता रहता था।

बस में बैठते ही भारत संपादक के शब्दों पर सोचने लगा। कितनी तल्लीनता थी उसमें पत्रकारिता के इस मार्ग पर चलने की! बी.ए. के बाद उसने 'फोटोग्राफी इन जर्नलिज्म' का कोर्स किया और फिर छोटी पत्रिकाओं में अपने चित्र भेजने शुरू किए। वर्षों की साधना के बाद आज वह एक प्रतिष्ठित फोटोग्राफर बन चुका था- उसके चित्र समाचार एजेंसियों तक में स्थान पाते थे। उसके अपने राज्य के एक छोटे-से नगर में भयंकर भूकंप आया था। इस आपदा ने न केवल हजारों जानें लीं, बल्कि लाखों को बेघर कर दिया। जब बस नगर के प्रवेश द्वार पर रुकी, तो वह पैदल ही आगे बढ़ गया। काम पर निकलने से पूर्व उसने पास की एक दुकान में चाय पीने का मन बनाया। चाय की चुस्की लेते हुए उसकी दृष्टि पास रखे अखबार पर पड़ी। प्रथम पृष्ठ पर उसी का खींचा

एक चित्र प्रकाशित था- वह क्षण भर के लिए ठिठका, एक अधूरी दृष्टि चित्र पर डाली, और फिर अपने काम में जुट गया। राशन वितरण और राहत कार्यों के दृश्य उसने अपने कैमरे में कैद किए, और कई तस्वीरें संपादकों को भेज दीं। अब वह अपने अस्थायी टेंट की ओर लौटने लगा, जो पत्रकारों के लिए प्रशासन द्वारा व्यवस्था के तहत तैयार किए गए थे। शाम ढले उसकी भेंट भार्गव से हुई- उसी की उम्र का एक अन्य पत्रकार।

'दोस्त, आज तो तुम पूरी मीडिया में छाए हुए हो!' -भार्गव ने मुस्कराते हुए कहा।

'अरे नहीं यार! बस दृश्य ठीक मिला और फोटो हिट हो गया।' -भारत ने हल्की हँसी में उत्तर दिया।

'नहीं मित्र! उस चित्र को ध्यान से देखो... उसमें पूरा भूकंप बोल रहा है। उसकी हर रेखा में पीड़ा है। क्या तुमने दुबारा देखा है वह फोटो?'

'हाँ... हाँ... देख लूंगा! वैसे भी मैं अपने खींचे चित्रों को बार-बार नहीं देखता। वरना वे दृश्य मेरे भीतर उतरने लगते हैं... दर्द मेरे भीतर घर करने लगता है।?' भारत ने एक सिगरेट सुलगाई और फिर कहा, 'डाक्टर की तरह रहो- चीर-फाड़ करो, मगर मरीज के दर्द को आत्मसात मत करो।'

'नहीं भारत! मैं मानता हूँ कि एक पत्रकार को संवेदना को समझना ही होगा। बिना संवेदना के उसकी कलम नीरस होगी, उसका कैमरा निष्प्राण।'

'ठीक कहते हो, पर यदि हर दुख को भीतर उतार लूँगा तो कैसे जी पाऊँगा? मैं बस कैमरामैन हूँ- पीड़ा को दर्शाने वाला, पीड़ा का भागीदार नहीं।'

'अच्छा छोड़ो!' भारत ने बात बदलते हुए कहा, 'चलो किसी और विषय पर बात करते हैं।'

रात को अपने टेंट में सोने से पहले भारत ने दिनभर के अखबारों पर निगाह डाली। प्रथम पृष्ठ पर दृष्टि गई, तो उसका ध्यान उसी चित्र पर अटक गया कृ वह चित्र जो उसने स्वयं खींचा था। चित्र में एक वृद्ध व्यक्ति एक पतीले में कुछ पका रहा था। उसके पास एक नन्हीं बच्ची बैठी थी, जिसकी आँखें पतीले पर टिकी थीं। कुछ ही दूरी पर एक कुत्ता बैठा था- उसकी दृष्टि भी उसी पतीले की ओर थी।

एक क्षण में जैसे भीतर कुछ टूट गया। उसके मन की गहराइयों से आवाज आई, 'क्या यही मेरा उद्देश्य है? क्या मैं केवल ऐसे हृदय विदारक दृश्य

पकड़कर प्रसन्न होता हूँ? क्या मुझे उन चेहरों की पीड़ा से कुछ लेना-देना नहीं? क्या मैं इतना निर्मम, इतना पाषाण-हृदय बन गया हूँ? मैं कैसा मनुष्य हूँ जो भूख से बिलबिलाते बच्चों की तस्वीरें खींचता हूँ, ताकि वे अखबारों में छपें और बदले में मुझे पैसे मिलें? क्या मेरी रोजी-रोटी इन दुखद चित्रों पर टिकी है? यह कितनी शर्म की बात है!' फिर अचानक जैसे मन ने दूसरा पक्ष प्रस्तुत किया, 'परंतु यही तो मेरा पेशा है। अगर मैं इन पीड़ादायक दृश्यों को कैमरे में कैद न करूँ, तो दुनिया तक इनका सच कैसे पहुँचेगा? शायद मेरी खींची तस्वीरें न जाने कितनी आँखों में आंसू लाती हों, कितने दिलों में सहानुभूति और संवेदना जगाती हों। शायद इन्हीं चित्रों से प्रेरित होकर कोई सहायता के लिए आगे आता हो... नहीं, मुझे दुखी नहीं होना चाहिए। मेरी कला ही मेरा माध्यम है- इन चेहरों की पीड़ा को दुनिया के सामने रखने का माध्यम। यही मेरा धर्म है- यही मेरी पत्रकारिता।' भारत ने यह सब सोचते-सोचते एक सिगरेट सुलगाई। उठते धुएं के छोटे-छोटे बादलों को वह एकटक निहारता रहा- उन धुएं में उसे फिर वही चेहरे दिखाई देने लगे, जो उस प्रसिद्ध चित्र में थे, जिसने उसे देशभर में पहचान दिलाई थी।

एकाएक उसने एक निर्णय लिया, 'कल सुबह सबसे पहले मैं उन लोगों से मिलने जाऊँगा।' उसने ठान लिया, 'जिनके टूटे जीवन की छाया को मैंने अपने कैमरे में कैद कर, शोहरत की सीढ़ियाँ चढ़ीं हैं।' परंतु यह निर्णय मन को शांत नहीं कर सका। वह देर रात तक करवटें बदलता रहा। फिर आधी रात को ही उठ खड़ा हुआ और टेंट से बाहर निकल पड़ा। शहर की बुझी-बुझी सड़कों की ओर उसके पांव बढ़ चले। उसके भीतर एक प्रश्न निरंतर गूंज रहा था, 'क्या वे लोग अब भी वहीं होंगे? क्या अब सरकारी टेंट में जा चुके होंगे? या फिर... नहीं!'

भारत वीरान गलियों से गुजरता रहा, टूटे हुए मकानों और बिखरे मलबे के बीच देर तक भटकता रहा। परंतु जिन चेहरों की तलाश में वह निकला था, वे उसे कहीं दिखाई नहीं दिए। कोई रास्ता न सूझने पर वह लौटकर अपने अस्थायी टेंट में आ गया।

सुबह, वह चुपचाप उठा और अपने कैमरे को पतली चादर में सावधानी से लपेटकर फिर से निकल पड़ा- उन चेहरों की तलाश में, जिन पर प्रकृति का कहर झुलसा हुआ था। वह उन किरदारों को ढूँढ़ने चला था, जिनकी जिंदगियाँ

तस्वीरों से कहीं ज्यादा त्रासद और खामोश हो चुकी थीं। एक चौड़ी गली के कोने पर उसे एक जानी-पहचानी जगह दिखाई दी। वहीं, एक लगभग अस्सी वर्ष का वृद्ध आग के समीप उकड़ू बैठा था- लकड़ियों की धीमी आँच में अपने शरीर को तापता हुआ। पास ही एक दस वर्षीय बालिका बैठी थी, और उनके जीवन की निरंतर छाया बनकर साथ था एक कुत्ता- वफादार, मौन और जागरूक। वह कुत्ता, जिसने शायद सब कुछ खो दिया था, पर अपनी वफा अब भी जिंदा रखे था- एक ऐसी वफा, जिसकी गवाही अब बस वह बूढ़ा दे सकता था, या वह छोटी सी मासूम बच्ची।

भारत को देखते ही तीनों एकाएक सिहर उठे। कुत्ते ने कान खड़े कर दिए, और बूढ़े की आँखों में जैसे किसी भूतपूर्व भय की परछाई उभर आई। भारत की आवाज सुनकर वृद्ध काँप गया- मानो किसी जानी-पहचानी लाश ने पुकारा हो। वह कांपता हुआ उठा और भारत के सामने आ खड़ा हुआ।

भारत ने धीमे स्वर में कहा, ६बाबा, मैं एक पत्रकार हूँ...' पर यह वह स्वर नहीं था जो वह गर्व से किसी परिचय में बोलता था। आज उसमें संशय था, अपराधबोध था, संकोच था। शायद भारत जानता था कि सामने खड़े इस व्यक्ति के मन में पत्रकार, व्यापारी, नेता, सभी एक जैसे हैं- वो लोग जो बस आते हैं, देखते हैं, और चले जाते हैं। क्या देगा कोई पत्रकार? एक और तस्वीर ही तो ले जाएगा।

बूढ़ा उसे एक बार देखता है, और फिर चुपचाप लकड़ियों को सहेजने लगता है। लकड़ियां जल रही थीं- पर वो लपटें कोई आम आग नहीं थीं। वो खामोश थीं, लेकिन भीतर न जाने कितने चीत्कार छुपाए हुए। वह आग हाल ही में कितनी ही लाशों को जला चुकी थी- कुछ को लपटों में, तो कुछ को धुएं में गायब होते देखा था।

भारत उसे निहारता रहा। वह सोचने लगा- क्या इस आग का काम उसके कैमरे से अलग है? क्या वह आग ज्यादा ईमानदार नहीं? वह जलाती है, पर दिखावे का मुखौटा नहीं पहनती। शायद आग और पत्रकार- दोनों साक्षी हैं मानवता के अंतहीन दुख के, परंतु आग राख छोड़ती है, पत्रकार छवि।

उसकी तंद्रा उस बालिका की नजरों ने तोड़ी- वह चुपचाप कम्बल से झांक रही थी। उसकी आँखों में भय, पीड़ा और मासूम जिज्ञासा थी। वह भारत के गले में लटकते कैमरे को ताकती रही- जैसे यह उसके लिए कोई नई,

अनजानी वस्तु हो। शायद उसने सोचा होगा, 'क्या मेरी भी तस्वीर लेगा अंकल?' -पर उसका डर, उसकी थरथराहट, उसके होंठों तक कोई भी शब्द नहीं पहुँचने देती। वह चुप रही।

चार ईंटों को जोड़कर बनाया गया चूल्हा, जिसके ऊपर एक एल्यूमीनियम का पतीला रखा था- पूरी तरह काला हो चुका। उसमें क्या पक रहा था, यह जरूरी नहीं था। जरूरी यह था कि वहाँ एक जीवन, एक भूख, एक चुप्पी पक रही थी।

भारत खड़ा रहा, देखता रहा। पर इस बार, कैमरा उसकी आँख में नहीं, उसके भीतर था। बहुत देर तक। वहीं पास में बैठा कुत्ता उसकी ओर अपलक निहारता रहा- उसकी लंबी जीभ बाहर निकली थी और वह हांफ रहा था, मानो उसके भीतर शब्द थे जिन्हें वह बोल नहीं सकता था। भारत उसे देखता रहा और सोचने लगा कृ इस निरीह प्राणी ने क्या कुछ नहीं देख लिया होगा? शायद इस जन्म के बाद यह कुत्ता फिर कभी मनुष्य बनने की आकांक्षा न करे। कौन जाने, इसके भाई- बांधवों ने भी भूख और भय के उस समय में इंसानों के चिथड़े नोच खाए हों!

बाबा ने कुत्ते की ओर देखते हुए धीमी आवाज में कहा, 'यह बेचारा अपने मालिक से भी वफा नहीं कर पाया... जब भूकंप आया था, तब यह मेरे साथ पटरियों के पास भटक रहा था। न जाने उस रात इसे क्या हो गया था- बस भौंकता ही रहा, रोता ही रहा। शायद इसने किसी अनहोनी की आहट को पहले ही भांप लिया था... किसी अदृश्य राक्षस की परछाइयाँ देख ली थीं इसने। पूरी रात यह बेचैन होकर भौंकता रहा, जैसे किसी अनजानी आपदा का ऐलान कर रहा हो। सुबह होते-होते इसकी रुलाई और भी गहरी हो गई। मैं इसे घर से दूर ले जाना चाहता था, लेकिन यह जाना नहीं चाहता था... बिल्कुल नहीं। मेरा बेटा इसे शुरू से ही पसंद नहीं करता था। उसने झुंझलाकर जोर से डंडा दे मारा। बेचारा शेरू! दर्द में बिलबिलाया, लेकिन फिर भी घर छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। मैं इसे जबरदस्ती जंजीर से बाँधकर बाहर ले गया। वो रास्ते भर धीमे-धीमे भौंकता रहा- जैसे कुछ कहना चाहता हो, कोई बात, कोई चेतावनी। मैं बस उसे पुचकारता रहा, चुप कराने की कोशिश करता रहा। सुबह के लगभग छह बजे होंगे... हम रेल की पटरियों के किनारे घूम रहे थे। अचानक मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई विशाल राक्षस बहुत दूर से हमारी ओर चला आ रहा

है। उसकी दहाड़ इतनी भयानक थी कि रूह तक कांप गई। उस राक्षस के पैर इतने भारी थे कि बड़े-बड़े मकान उसकी पदचाप से चकनाचूर हो रहे थे। वह जहाँ भी पैर रखता, वहाँ जमीन फट जाती, दीवारें दरक जातीं। और फिर... वो हमारे करीब आता चला गया। एक ट्रेन सामने से गुजरी, मैंने शेरू की जंजीर खींची- वो जैसे ट्रेन की ओर भागना चाहता था। आसमान में कौवे अजीब तरह की आवाजें निकालने लगे, मानो कोई अनिष्ट होने वाला हो। पक्षी उड़ने लगे- सारे के सारे, शोर मचाते हुए। फिर धरती कांपी। राक्षस ने जैसे अपना पैर जोर से जमीन पर मारा हो। शेरू ने भी एक झटका दिया, जैसे मुझे खींचकर कहीं दूर ले जाना चाहता हो। तभी धरती फिर कांपी, और इस बार इतनी जोर से कांपी कि कान सुन्न हो गए, पक्षी चिल्ला उठे, और चारों ओर से चीखों का तूफान उठ खड़ा हुआ। रेल की पटरियाँ तक टेढ़ी हो गईं। शेरू मेरी पकड़ से छूट गया और पागलों की तरह घर की ओर भागा। मैं भी उसके पीछे दौड़ा... पर अब क्या लाभ था दौड़ने का? मेरे मन ने कहा- सब कुछ समाप्त हो चुका है। मैं सड़क तक पहुँचा तो देखा कृ शहर उजड़ चुका है। बड़े-बड़े मकान धराशायी थे, और वह सात मंजिल वाला भवन भी टेढ़ा हो चुका था। 'अलादीन' का वह छोटा कमरा जो मैंने कभी बड़े गर्व से बनवाया था- अब वहाँ खंडहरों की चुप्पी पसरी थी। उसके छोटे बेटे को थोड़ी चोट आई थी, लेकिन उसकी पत्नी की तो सिर फटने से मृत्यु हो चुकी थी। बड़ा बेटा छोटे भाई के पास खड़ा रो रहा था। और मैं... बस खड़ा देखता रहा। लाशों के ढेर मेरी आँखों के सामने फैलते गए और मेरी दृष्टि में अंधकार छा गया। मैं घर पहुँचा, तो जैसे मेरा कलेजा बाहर आ गिरा। सब कुछ समाप्त हो चुका था। दो कमरों के ऊपर जो एक कमरा मैंने अपने लिए बनाया था, वह मलबे में दब चुका था। नीचे बेटा-बहू और पोता रहते थे... और अब- कोई नहीं बचा।' बाबा की आँखें पत्थर हो चुकी थीं। उनकी वाणी सूखी, काँपती हुई, फिर भी भीतर कहीं से एक अग्नि सुलगती हुई।

भारत अब भी मौन था। शेरू फिर से उसके पास आ बैठा था- अपनी सघन आँखों से जैसे कुछ कहना चाहता हो, या शायद बस चुपचाप उस शोक के पहाड़ में सहभागी बनना चाहता हो। बाबा के हृदय में जैसे कोई पुराना जख्म फिर से हरा हो गया। एक दर्द उठा, और उसके साथ बह चली आँसुओं की एक निःशब्द नदी।

संदीप शर्मा एक अनुभवी शिक्षक हैं, जो वर्तमान में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, हमीरपुर (हि.प्र.) में कार्यरत हैं। इनके शोध लेख, कविताएं और कहानियां देश-प्रदेश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुकी हैं, जो उनकी बहुआयामी प्रतिभा और सृजनात्मक दृष्टिकोण को दर्शाती हैं।

संपर्कः: 618, वार्ड नं. 1, कृष्णा नगर, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश 177001

जब मुनिया का नाम आया, तो बाबा का गला भर्रा गया। वे जोर-जोर से रो पड़े। पर उस रूदन को सुनने वाला वहाँ कौन था? कुछ देर बाद, बाबा फिर बोले, 'शेरू मलबे के एक ढेर पर चढ़कर एक कोने की ओर लगातार भौंक रहा था। मैं भागा... देखा, मुनिया वहाँ, ईंटों के नीचे दुबकी हुई थी। ऊपर रखी ईंटें हिल रही थीं, जैसे अब गिरने ही वाली हों। मैंने जल्दी-जल्दी ईंटें हटाईं, तो एक सुराख बना, और उसकी छोटी-सी बाँह बाहर निकल आई। मैंने उसकी दोनों बाँहों को टटोला, खींच लिया... उसकी फ्रॉक फट चुकी थी... पर मुनिया बच गई थी। मगर बेटा और बहू... ' बाबा की आवाज वहीं टूट गई। एक लंबी चुप्पी फैल गई- मृत्यु की चुप्पी, अपनों के छूट जाने की चुप्पी। मुनिया अब भी भारत के गले में लटकते कैमरे को देख रही थी, पर भारत की आँखें उस दृश्य को नहीं देख पा रही थीं। मुनिया का मन, भारत के चेहरे की शांति और कोमलता को पढ़ रहा था। शायद वह उसे अपना मित्र मानने लगी थी। उधर, भारत के मन में यह चल रहा था कि वह बाबा की मदद कैसे कर सके।

'यह इलाका अब अस्थायी राहत शिविर बन जाएगा।' उसने सोचा, 'कल सुबह से यहाँ तंबू लगेंगे, प्रशासन राशन और जरूरी सामान बाँटेगा। कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ भी आएँगी- कंबल, दवा, भोजन... पर अगर भीड़ बेकाबू हो गई, तो क्या होगा?'

बाबा चुपचाप अपनी हथेलियाँ आग पर सेंक रहे थे। मुनिया कहीं चली गई थी। भारत भी मौन था, उसकी हथेलियाँ भी धीरे-धीरे उसी आग की ओर बढ़ी हुई थीं। इसके बाद भारत ने सहायता कार्यों की रिपोर्टिंग की तैयारी शुरू की। सोचा, कुछ तस्वीरें ले ले- 'अगर मैं यह सब ढंग से कैमरे में कैद कर लूँ, तो दुनिया को सच्चाई दिखाई जा सकेगी।'

कुछ ही देर में तीन ट्रक आ पहुँचे- दूध, ब्रेड, चावल, आटा, कपड़े, तंबू... सब कुछ था। पर जैसे ही ट्रकों के दरवाजे खुले, भीड़ चील-कौवों की तरह टूट पड़ी। धक्का-मुक्की मच गई। बाबा मुनिया का हाथ थामे सबसे पीछे खड़े थे। पुलिस ने लाइन लगाने की कोशिश की। बाबा अंततः अपने नंबर तक पहुँच ही गए। उन्होंने जो कुछ मिला- अपने कांपते हाथों से समेटा और अपने उजड़े हुए घर के पास लौट आए। भारत ने उन्हें जाते हुए देख लिया। उसने पहले ही राहत वितरण की तस्वीरें ले ली थीं, पर अब अंतिम क्षणों की एक तस्वीर और लेना चाहता था- शायद यह दिखाने के लिए कि अंत तक कोई भेदभाव नहीं हुआ। प्रेस के पास होने से अक्सर प्रशासन थोड़ा सतर्क रहता है- यह भारत जानता था। रात में वह फिर बाबा से मिलने गया। आज उन्होंने साथ बैठकर भोजन किया। बाबा ने अपने हाथों से चपातियाँ और दाल बनाई थी। वे प्रसन्न थे, 'सरकार की ओर से पंद्रह दिन का राशन मिल गया है।' उन्होंने कहा। उनकी आँखों में एक हल्की-सी उम्मीद चमक रही थी- 'अब घर कैसे बनाऊँ? बैंक में कुछ पैसे हैं, वो मिल जाएँ तो...।'

भारत ने उन्हें दिलासा दिया, 'बाबा, चिंता मत कीजिए। सरकार सबको घर बनाकर देगी। प्रधानमंत्री ने आज ही घोषणा की है- दो-तीन महीने में सभी को पुनर्वास मिलेगा। बस कुछ दिन निकाल लीजिए...!'

अगली सुबह, जब भारत किसी विशेष बैठक के लिए निकलने वाला था, तो अचानक मन हुआ- बाबा और मुनिया से एक बार मिल ले। वह उनके तंबू की ओर बढ़ा। जैसे ही पास पहुँचा, देखा- वहाँ कुछ लोग खड़े थे। कोई रो रहा था, कोई स्तब्ध था। भारत का दिल धड़कने लगा। पास जाने पर मुनिया की रुलाई सुनाई दी। और फिर... वह दृश्य। बाबा धरती पर पड़े थे- खून से लथपथ चेहरा, सारा शरीर ठंडे काले खून से ढंका हुआ। मृत्यु ने एक और निर्दोष को अपनी गोद में ले लिया था। मुनिया पास बैठी रो रही थी। शेरू धीरे-धीरे भौंक रहा था, मानो वह भी विलाप कर रहा हो। भारत स्तब्ध रह गया। किसी से पूछा, तो एक आदमी ने कहा, 'क्या बताएँ साहब... रात को कुछ लोग अनाज और सामान के लालच में आए थे। बाबा ने रोका होगा, तो लोहे की रॉड से मार डाला। सब कुछ लूट कर ले गए...!' भारत को लगा, मानो एक और भूकंप आ गया हो। पर इस बार धरती नहीं, भीतर की मानवता हिल गई थी। और इस बार... उसने कोई तस्वीर नहीं खींची।

कहानी

आख़िरी पड़ाव

• महेश कुमार केशरी

यह कहानी पैतनपुर गाँव के किशोर करमजीत और उसके पिता गुलाब सिंह के जीवन के माध्यम से युवा मन, अपराध और समाज की हिंसा के बीच संघर्ष को उजागर करती है। करमजीत अपने पिता की तरह कट्टा बनाने का सपना देखता है, लेकिन उसे अपराध, नशाखोरी और राजनीतिक भ्रष्टाचार की कठोर वास्तविकताओं का सामना करना पड़ता है।

गिलास के गिरने की आवाज से गुलाब सिंह की तंद्रा टूट जाती है। वो 'हो-हो' की आवाज से बिल्ली को भगा देता है। लेकिन, बिल्ली अभी खिड़की पर खड़ी है। वो उठकर खिड़की तक जाता है। सामने गुरविंदर को देखकर वो चौंक जाता है। वो किसी लड़के से खड़ा होकर हँस-हँस कर बातें कर रहा है। उसके हाथ में एक पैकेट है- काले रंग की पॉलीथीन। उसका दिल फिर से बैठने लगता है।

गुरविंदर, उसके सगे भाई लखविंदर का बेटा है। वो पिछले साल जेल से होकर आया है- ड्रग्स बेचने के आरोप में। उस पर खालिस्तानी होने का आरोप भी लगा था। पाकिस्तानियों और आतंकवादियों से उनके संबंध होना भी बताया जा रहा था। पुलिस कह रही थी- बाहर देश से ये जो अफीम, कोकिन और हीरोईन आती है। वो हमारे दुश्मन मुल्क पाकिस्तान से आती है। ठीक है- ये बात भी समझ आती है। जगविंदर के साथ एक और लड़का पकड़ा गया था। वो माजीद था, एक पाकिस्तनी लड़का, पेशावर से था शायद। जैसा कि गुरविंदर बता रहा था- माजीद की उम्र कोई बीस-बाईस साल थी, उसका बाप कसाई था, रहमत शेख। दो-दो शादियां कर रखीं थी उसके बाप ने। वो उसकी सगी माँ को बहुत मारता-पीटता था। उसके आठ-आठ भाई बहन थे। किसी तरह उसने सातवीं पास की। उसका बाप पाकिस्तान में एक बार इमरान खान की तहरीर सुनने गया था। फिर उसी रैली में गोली लगने के कारण उसका बाप मर गया था। एक तो छोटी उम्र, फिर आठ-आठ लोगों की जिम्मेदारियां सिर पर। एक अकेला माजीद भला अकेले क्या-क्या करता ? लोग महंगाई से उस देश में पहले

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

ही बदहाल थे। साग-सब्जी खरीदने के पैसे तो पास में होते नहीं थे, गोश्त कौन खरीदता ?

ऐसा नहीं था कि माजीद बेवकूफ था। वो अखबार पढ़ता था। चीजों को समझता था। उसने अखबारों में ही पढ़ा था कि कुछ सालों पहले मुल्क का पूर्व प्रधानमंत्री जिन पर भ्रष्टाचार के गंभीर मामले थें, वो देश छोड़कर अभी लंदन में रह रहा है, और अब अपने मुल्क में इमरान खान के अपदस्थ होते ही वापसी की तैयारी में है। चुनाव नजदीक आ रहें हैं। ऐसा तो उसके खुद के देश में भी हो रहा है। यहाँ के नामचीन भगौड़े बैकों का पैसा लेकर लंदन, अमेरिका, यूरोप में बिजनेस को सेटल कर रहें हैं। आखिर जो दूसरे मुल्क में हो रहा है, वो तो उसके देश में भी हो रहा है।

पड़ोसी देश का पूर्व भगोड़ा या देश निकाला प्रधानमंत्री सोने की थाली मे बैठकर मेवों का आनंद ले रहा है, वो जो एक भ्रष्टाचारी है। माजीद जैसे लाखों लोग जो मेहनत करते हैं। सरकार को टैक्स भरते हैं, उनके टैक्स के पैसों से ही ये सरकारें भ्रष्टाचार करती हैं, बड़ी-बड़ी गाड़ियों में घूमतीं हैं। फॉरेन देशों में हवाई यात्रायें करतीं हैं, बावजूद इसके कि वो सफेदपोश हैं और माजीद जैसे लोग जरायमपेशा! क्या जो लोग हथियार या ड्रग्स बेचते हैं, वो इक्के-दुग्गे लोग हैं... सारे काम इन सफेदपोश और बड़े लोगों की इच्छा-शक्ति और सत्ता के संरक्षण के बिना आखिर कैसे हो सकता है ? इसको ऐसे समझना चाहिए कि हमारे देश के उन हिस्सों में जहाँ शराब बैन है, वहाँ शराब बिकती है, स्थानीय थाना को सेट कर लिया जाता है, आबकारी को उनका हिस्सा जाता है। इसका एक बड़ा नेटवर्क है, सियासतदानों से लेकर अफसरशाह सब के सब बिके होते हैं। तभी इतनी तादात में शराब बनती और बिकती है। कभी जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिये दीपावली और दशहरे में दुकानों में दबिश दी जाती है, छोटे-छोटे पॉलीथीन और ताड़ी बेचने वालों को पकड़कर जेल में बंद कर दिया जाता है। अखबार का कॉलम भरने के लिये, कमीशन खाने वाला अधिकारी ही अपने जिले के अफसरों को डॉटता-फटकारता है, साल में दस लोगों भी नहीं पकड़े जाते। आखिर, जेल-मैनुअल और उसकी डायरी को मेंटेंन भी तो करना होता है, यहाँ हर बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है।

थोड़ा बहुत गुलाब सिंह भी राजनीति समझता है। वो देख रहा है कि इधर कुछ सालों में हमारे देश से कई उद्योगपति गायब हो गये हैं, बैंकों से बड़ा-बड़ा कर्जा लेकर- हजारों करोड़ लेकर। कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सका! क्या ये सब बिना मिलीभगत के होता है ? क्या बड़े-बड़े एम.पी., एम.एल.ए.,

मिनिस्टर से उनकी कोई सांठ-गांठ नहीं है ? बिना सांठ-गांठ के बैंक इनको इतना बड़ा-बड़ा कर्जा दे देती है। नहीं, एक बहुत बड़ी लॉबी होती है इनकी, मिनिस्टरों से बड़ा-बड़ा करार होता है इनका। बाहर के देशों में ये उद्योगपति इन मिनिस्टरों के लिये बैंकों में इनके नाम से पैसे जमा करवा देते हैं। उनके बच्चों के लिये शॉपिंग मॉल, जिम, कॉम्प्लेक्स बनवा देते हैं। इन पैसों से इन मिनिस्टरों के लिये विदेशों में जन समर्थन का जुगाड़ किया-करवाया जाता है, ताकि उनकी राजनीति वहाँ भी चमकायी जा सके। उद्योगपति वहाँ भी अपनी जमीन ले सकें, कारखाने लगा सकें, अपना व्यवसाय विदेशों तक फैला सकें, उनका प्रोडक्ट विदेशों में भी जोर-शोर से बिके, उनकी आमदनी लगातार बढ़ती जाये... फिर वहाँ की सरकार में वे एक मुकाम हासिल करें, अपने लोगों के लिये लॉबिंग करें। चुनाव में सरकार को फंड दिये जाते हैं, जो करोड़ो रुपये के रूप में होते हैं। ये पैसे उद्योगपति सत्ता में बैठे सरकार और विपक्ष दोनों को बारी-बारी से देते हैं। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितयों को देखकर... सरकारें आती-जाती रहतीं हैं, जनता वही रहती है, जो उनके प्रोडक्ट खरीदती है।

गुलाब सिंह का छोटा भाई संतन विकलांग है, उसका एक हाथ नहीं है, घर में बैठे-बैठे उसका मन नहीं लगता था। सोचा, कोई छोटा-मोटा कुटीर उद्योग ही लगा ले। इसके लिये कुछ बैंक से कर्जा ले ले। वो बैंकों के चक्कर लगाता रहा, लेकिन हाल वही था- जब तक हाथ पर कुछ रखोगे नहीं, फाईल आगे नहीं बढ़ती। आज कल गुलाब सिंह के बनाये कट्टों पर संतन पॉलिश करने का काम करता है।

सरकार इन उघोगपतियों के प्रत्यर्पण की बात करती है। लेकिन लंदन और दूसरे देशों के प्रत्यार्पण कानूनों का मसौदा और उसकी जटिलतायें भी अलग-अलग हैं- जो चीज हमारे देश में अपराध है जरूरी नहीं कि दूसरा देश भी उसे अपराध मान ले। बैंकों से पैसे लेकर भागे लोग उस देश में जाकर वहाँ अपने शॉपिंग मॉल्स खोलते हैं, कारखाने लगाते हैं। वहाँ काम ब्रिटिशों और अमेरिकियों को मिलता है। अब कोई आदमी बाहर से आकर उनके देश के लोगों को काम देगा, उसके देश को कमाई देगा... तो कौन-सा ऐसा देश है, जो हमारे देश की बात मानेगा और उन उद्योगपतियों को हमारे सुपुर्द कर देगा ?

सभी अपने-अपने स्वार्थ से जुड़े हैं। हमारे देश के लोग नहीं चाहते कि हमारे देश में बड़ी-बड़ी कंपनियां लगें, लोगों को रोजगार मिले, बेकारी खत्म हो। दरअसल दुनिया के सभी मुल्कों में रोजगार एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरकर सामने आयी है। एक ही देश के दो राज्यों के भीतर बाहरी-भीतरी की

लड़ाई छिड़ी हुई है। कुछ सालों पहले आस्ट्रेलिया में एक आई.टी. के एक छात्र की हत्या हो गई थी। उस देश के लोगों को लगता है कि भारतीय छात्र उनकी नौकरियां खाते जा रहें हैं। विदेशों में भारतीय छात्रों पर हाल के वर्षों में हमले बढ़े हैं। इसका कारण केवल और केवल रोजगार का छिन जाना है। अपने देश में भी महाराष्ट्र में बिहारियों और यू.पी. के लोगों को मारा और भगाया जा रहा है। सब प्राथमिकता सूची में आगे रहना चाहते हैं, अपने लोगों को सब जगह काम मिलना चाहिए, दूसरे लोग हाशिये पर धकेल दिये जाते हैं। फिर माजीद या जगविंदर जैसे लोग थोड़ा बहुत हेर-फेर कर लेते हैं तो इन सरकारों का क्या जाता है ? ये तो जीने और खाने के लिये हेर-फेर करते हैं... पैकेट इधर-उधर कर देते हैं। लेकिन ये सत्ता में फेरबदल या हेर-फेर नहीं करते ? चुनाव के बाद विधायकों को खरीदकर विपक्षी-पार्टी अपनी सरकार बनवाती है। ये लोकतंत्र की हत्या नहीं तो और क्या है? वकील पैसे लेकर अपराधी को बचाता है, बनिया अनाज में कंकर- पत्थर मिलाता है, ग्वाला दूध में पानी मिलाता है, सब अपने-अपने स्तर से हेर-फेर करते हैं अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार। फिर देश के इस पार और उस पार सियासतदान एक तरफ हमारी कौम को खतरा है तो दूसरी तरफ हमारी कौम को खतरा है का राग अलापते हैं। और शिक्षा, महंगाई, बेरोजगारी के मुद्दे पर चुप्पी साध लेते हैं। दोनों देशों की सेनायें और जनता आपस में लड़ती और मरती रहती है। कभी देखा है इस पार के या उस पार के किसी नेता के बच्चे या नेता को मरते हुए। उनके लिये तो वी.वी.आई. पी. सुरक्षा की व्यवस्था होती है। किसी हंगामे में सिक्यूरिटी फोर्सेज नेताजी को सुरक्षित बाहर लेकर निकल जाती हैं। अखबार के पृष्ठ पर किसानों और मजदूरों के बच्चे जो या तो फोर्सेज में या सेना में होते हैं- मारे जाते हैं... सरहद पर या वी.वी.आई.पी. की सुरक्षा में गोली खाने के लिए।

‘अजी, सुनते हैं... आज शाम का खाना नहीं बनेगा क्या ? जाओ जाकर जंगल से लकड़ियां बीन लाओ।’ लाड़ो ने हॉक लगाई तो गुलाब सिंह की तंद्रा फिर से एक बार टूटी। उसने पाईप को आग पर गर्म करने वाले पंखे को बंद किया और चल पड़ा जंगल की ओर लकड़ियां चुनने। थोड़ी देर बाद वो एक बोरे में थोड़े से पत्ते चुनकर जंगल से ले आया।

पैतनपुर छोटा-सा गाँव है। लेकिन उसके गाँव-घर में उज्ज्वला का अबतक कोई कनेक्शन नहीं आया है। राशनकार्ड भी नहीं बना है उसका। सिगड़ी में आग सुलग रही थी। उसने पतीली चढ़ाई चाय बनाने के लिये। उस आग में उसको अपना भविष्य भी धू-धू करके जलता दिखने लगा था। उसमें उस आग

से आँख मिलाने का ताव नहीं बचा था। क्या करेगा जब उसका बच्चा भी अपराधी बन जायेगा ? उसके दादा-पड़दादा आजादी के आंदोलन में स्वतंत्रता सेनानियों के लिये तलवार, फरसा, गंडासा और भाला बनाते थे। उन दिनों दूसरे लोग या विदेशी हमारे दुश्मन थे, अब अपने लोग हैं... जो सत्ता में बराबर की भागीदारी रखते हैं। लेकिन हमारे हक की बात कभी नहीं करते। फिर कौन अपने और कौन बेगाने ? जो अपने हैं, घोटाले कर रहें हैं। हमारे हिस्से का सब कुछ सफेदपोश बनकर हमारे ही सामने खा जा रहे हैं। भेंड़ों का शिकार कुछ भेंडिये कर रहें हैं। भेंड़ों का एक भरा पूरा झुंड है। भेंडिये, शेर की तरह भेंड़ के पुठ्ठों को नोच खाना चाहते हैं, और भेंड़ों का झुंड असहाय होकर एक-दूसरे को ताक रहा है। इससे भले तो ब्रिटिशर थे, कम से कम आजादी के इतने दिनों के बाद भी बने पुल-पुलिया साबुत बचे हैं। यहाँ तो उदघाट्न के दो दिन बाद ही पुल-पुलिया गिर जा रहें हैं। क्या हुआ आजादी के छिहत्तर सालों के बाद भी ? विकास गुलाब सिंह के गाँव का रास्ता जैसे भटक सा गया है। उसके गाँव में आज भी पक्की सड़क नहीं बनी है। चापाकल तो हैं, लेकिन उनमें पानी नहीं आता। सिस्टम की तरह विकास भी अँधा हो गया है!

'बाबा काम हो गया क्या? कार वाली पाईप समेट कर रख दूँ?' करमजीत सिगड़ी पर चढ़ी चाय को देखते हुए बोला।

'हूँ, हाँ बेटे, कार की पाईप बाद में रखना। इधर आ मेरे पास आकर बैठ!'

करमजीत वहीं पास में आकर जमीन पर बैठ गया।

'बेटा, कोई भी बाप ये नहीं चाहेगा कि उसका बेटा बड़ा होकर कट्टा बनाये। कल से ये कट्टा बनाने का मैं छोड़ दूँगा। क्या करूँगा, तुम्हें अपराधी बनाकर! कल बाहर चला जाऊंगा, तुझे और तेरी अम्मा को भी साथ ले चलूंगा। चेन्नई तेरे मामा के पास। तेरा मामा वहीं पोर्ट पर काम करता है। वहीं कोई काम खोज लेंगें। ना तो अब कट्टा बनाऊँगा, ना ही बेचूंगा। अब कभी इस गाँव में नहीं लौटेंगें हम। तुझे अपने सामने खत्म होते हुए नहीं देख सकता बेटा!' और गुलाब सिंह ने अपने बेटे करमजीत को अपने से चिपटा लिया। वो लगातार रोये जा रहा था।

करमजीत को अब भी ये समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर हुआ क्या है ? लेकिनय क्या इतने भर से ये समस्या खत्म हो जानी थी ? उस गाँव में जब सैकड़ों की संख्या में गुलाब सिंह जैसे लोग थे। सैकड़ों की संख्या में करमजीत सिंह और सीमा के उस पार माजीद जैसे लड़के थे!

कहानी

छलात्कार

• विकास कुमार

यह कहानी साहित्यिक प्रतिष्ठा, नवोदित लेखकों की संवेदनशीलता और साहित्यिक आलोचना के दुरुपयोग को उजागर करती है। सुकुमार के अचानक प्राप्त सम्मान और फिर घुमक्कड़ जी के दोहरे चरित्र द्वारा उन्हें सार्वजनिक रूप से अपमानित किए जाने का तनाव, साहित्यिक दुनिया के सघन प्रतिस्पर्धात्मक और प्रभुत्व-आश्रित वातावरण को सामने लाता है। कहानी न केवल लेखक और आलोचक के रिश्ते की जटिलता को दर्शाती है, बल्कि यह भी बताती है कि साहित्यिक आलोचना केवल कृति तक सीमित रहनी चाहिए, लेखक के निजी जीवन और सामाजिक स्थिति पर उसका अपमानजनक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

आज एक युवा साहित्यकार अपने पूवार्ध काल में हीं साहित्यिक छलात्कार का शिकार हो गया था। एक अंकुर जिसे अभी छतनार वट वृक्ष का रूप धारण करना था, अपने गले में फंदा डालकर पंखे से झूल गया था और अपनी इहलीला समाप्त कर डाली थी। और खुद को समाप्त करता भी क्यों नहीं वह, आज जो फजीहत हुई थी, वह कम थी क्या। इतनी बेइज्जती उस साहित्यिक गोष्ठी में, जिसके बाद तो उसका जीवित रहना उचित था क्या? उसके ही विद्यार्थियों और कनिष्ठ साहित्यकारों के सामने उसके सम्मान के साथ खेलना, भला वह कैसे बर्दाश्त कर सकता था। आखिर उसकी भी तो अपनी इज्जत थी, परंतु उसकी इज्जत को तार-तार करके रख दिया था अपने अलोचकीय वक्तव्य में, आर्यभट्ट सिंह 'घुमक्कड़' जी ने। और आलोचना तो लेखक के साहित्यिक कृति पर होती है, न कि लेखक के निजी परिस्थितियों पर, इस प्रकार की आलोचना को अगर आलोचना की संज्ञा दी जाय, तो फिर आलोचना विधा पर प्रश्नवाचक चि लगना स्वाभाविक है।

दरअसल, नवोदित युवा साहित्यिकार सुकुमार की कहानी एक महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'समकालीन आर्यावर्त साहित्य' के नवीन अंक में छपकर आयी थी, सो पूरे शहर के साहित्यकारों के बीच यह खबर आग की तरह फैल गयी थी कि रांची के एक नवोदित कथाकार की कहानी एक बड़ी पत्रिका में छपी है। हालांकि, इस पत्रिका में कहानी छपने के पूर्व सुकुमार की

कई कहानियाँ कई छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं, लेकिन अभी तक उसे कोई पहचान नहीं मिल पाया था, लेकिन जैसे ही इस पत्रिका में कहानी छपी कि शहर के मानिंद साहित्यकारों ने उसे मोबाइल पर ढेर-सारी बधाइयाँ भी देना शुरू कर दिया था। इतना ही नहीं, रांची के बाहर से भी कई पाठकों का फोन आने लगा था।

रांची शहर के जाने माने साहित्यकार-कवि-आलोचक आर्यभट्ट सिंह 'घुमक्कड़', जो कि साहित्यिक दुनिया में अपनी गहरी पैठ जमा चुके थे, बल्कि यों कह लें कि रांची शहर के साहित्यिक दुनिया पर एकाधिकार स्थापित कर लिया था तो, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने भी सुकुमार को बधाई देते हुए कहा था, 'सुकुमार! बधाई हो तुमको। ...समकालीन आर्यावर्त साहित्य कोई साधारण पत्रिका नहीं है। इस पत्रिका में छपने का मतलब कि तुम अब स्थापित कथाकार हो गये हो।'

एक अदने से नवोदित कथाकार सुकुमार की पूछ पहले तो कुछ भी नहीं थी, अब इस पत्रिका में कहानी छपने के बाद उसकी इतनी पूछ बढ़ गयी थी कि लोग फोन कर-करके बधाईयाँ दे रहे थे। ऐसे में उसका सीना चौड़ा होना स्वाभाविक ही था। उसमें भी 'घुमक्कड़' जी का फोन आना कोई साधारण बात नहीं थी। एक तो वे जल्दी किसी से बात करते नहीं थे- बहुत बड़े साहित्यकार जो थे, कई राष्ट्रीय पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजे भी गये थे, ऐसे में लोग उन्हें ही फोन करते थे और आगे-पीछे होते रहते थे, लेकिन यहाँ तो उल्टी गंगा बह निकली थी। फिर भी प्रत्युत्तर में सुकुमार ने मुस्कुराते हुए सहज लहजे में जबाब दिया था, 'अरे... नही सर। अभी कहाँ स्थापित हुए है, इस साहित्य की दुनिया में। अभी तो बस आठ-दस कहानियाँ हीं तो छपी है। गलती से इस कहानी की हस्तलिखित प्रति डाक से भेज दी थी। अपने ही लेखकीय संघर्ष की कहानी थी, संपादक को यथार्थ लगा होगा, बस छाप दिया। ...इसमें कौन सी बड़ी बात है।'

'अरे नहीं, ऐसी बात नही है सुकुमार, तुम्हारी लेखनी में दम है, तभी तो बिना जान- पहचान और पैरवी के ही छपे हो। ...अच्छा छोड़ो। मैंने तुम्हें दूसरी बात के लिए फोन किया है। ...तुम ऐसा करो कि अब इस कहानी पर एक गोष्ठी का आयोजन करो। मुझे भी बुलाओ, और रांची शहर के सभी साहित्यिकारों और साहित्य प्रेमियों को भी बुलाओ। कहानी पर चर्चा होगी। सभी के बीच तुम्हारी एक अलग पहचान बनेगी, फिर गोष्ठी की रिर्पोटिंग अखबारों में

भी छपेगी। भाई, प्रचार-प्रसार तो होना ही चाहिए न।' 'घुमक्कड़' जी शब्दों में जैसे मधु टपक रहे थे।

बस फिर क्या था, सुकुमार के पैर जमीन पर नहीं पड़ने लगे थे। उसके अरमान तो आसमान में हिलोरे लेने लगे थे। आनन-फानन में उसमें रांची शहर के टाउन-हॉल को एक दिन के लिए बुक करवा लिया था- अपनी सद्य प्रकाशित कहानी पर गोष्ठी के आयोजन हेतु। और नाश्ता-पानी हेतु बगल के ही होटल से समोसा-कचौड़ी के लिए एडवांस दे डाला था। घुमक्कड़ जी के कहने पर ही कुछ निमंत्रण पत्र भी छपवा डाले। फिर शहर के मानिंद साहित्यकारों और साहित्यप्रेमियों को आमंत्रित भी कर आया। यहाँ तक सुकुमार ने अपने विभाग के अन्य प्राध्यापकों और विद्यार्थियों को भी न्योता दे डाला। घुमक्कड़ जी के निर्देशानुसार कहानी की कई प्रतिलिपि करवाकर कुछ सुधि आलोचकों, साहित्यिकारों एवं पाठकों को बांट दिया, ताकि वे उक्त गोष्ठी में भाग लेकर कहानी पर दो-चार शब्द बोल पायें। शहर के विभिन्न अखबार के पत्रकारों को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया।

निश्चित दिन और निश्चित समय पर शहर के छोटे-बड़े साहित्यकार, कवि, कहानीकार, आलोचक, समीक्षक, स्तंभकार, पत्रकार, प्राध्यापक, शिक्षक तथा हिंदी व समाजशास्त्र के विधार्थी पहुँच गये। हिंदी के विद्यार्थियों का आगमन घुमक्कड़ जी के निमंत्रण पर हुआ था, क्योंकि घुमक्कड़ जी रांची विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के प्राध्यापक थे, और विद्यार्थियों मे साहित्यिक चेतना को जगाने के ख्याल से उन्हें भी बुला लिया था। चूंकि सुकुमार उसी विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग मे अतिथि प्राध्यापक थे, अपनी अलग पहचान बनाने के ख्याल से उन्होंने भी अपने विभाग के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों को आमंत्रित कर लिया, ताकि वे समझ पायें कि सुकुमार भी कोई मामूली आदमी नहीं है। कुछ लोग तो ऐसे ही समोसा-कचौड़ी के चक्कर में भी भीड़ में शामिल हो गये थे, जिन्हें साहित्य से कुछ लेना-देना नहीं था।

टाउन हॉल की भीड़ को देखकर नवोदित कथाकार सुकुमार का मन-मयूर खुशी से नाच उठा था कि आज तो वे काफी प्रसिद्धि पा हीं लेंगें। आज उसकी कहानी पर चर्चा होगी, एक-से-एक बात निकल कर आयेगी, उसके संघर्षों पर प्रकाश डाला जायेगा, उसके जीवन- गाथा आज लोगों के सामने रखी जायेगी, कल के अखबार में बड़ा-बड़ा कभरेज आयेगा, फिर यह बात दूर तलक जायेगी, ...और फिर वह एक स्थापित कथाकार बन जायेगा। ...फिर उसके बाद तो तरह-तरह के पुरस्कार और सम्मान...। इन्हीं ख्याली पुलाव के साथ सुकुमार

कार्यक्रम में सभी आंगुतकों को हाथ जोड़कर अभिवादन कर ससम्मान उपयुक्त स्थानों पर विराजमान करवा रहे थे। उधर आर्यभट्ट सिंह 'घुमक्कड़' भी अपने चेले-चपाटियों के साथ तशरीफ लाये थे। चूकि उन्हें रांची साहित्य जगत का भीष्म पितामह माना जाता था, जाहिर-सी बात थी कि उन्हें ही अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान होना था, सो आकर बिंदास रूप से विराजमान हो गये थे- अध्यक्षीय कुर्सी पर, आज के गोष्ठी की अध्यक्षता करने हेतु।

इधर विभिन्न साहित्यिक गोष्ठियों में वे ही अघोषित अध्यक्ष हुआ करते थे, क्योंकि रांची के साहित्यकारों को लगता था कि वे हीं सबसे वरिष्ठ है,. और काफी लंबे समय तक घुमक्कड़ी करके साहित्य को नई दिशा प्रदान की है। हिंदी के आंचलिक कथाकार-उपन्यासकार नागेश्वर नाथ 'चंचल' के विलुप्तप्राय साहित्य को खोज कर घुमक्कड़ जी अपने संपादकत्व में उनकी कृतियों को चार-पाँच भागों में प्रकाशित कर 'शोधीराम' की उपाधि प्राप्त कर ली थी। अपने जमाने में 'सूर्य-प्रभात' नामक पत्रिका का संपादन व प्रकाशन भी किया था। चार-पाँच कविता-पुस्तकें भी प्रकाशित हो गयीं थीं। देश-विदेश से तरह- तरह के पुरस्कार व सम्मान भी प्राप्त कर चुके थे। ऐसे में रांची की साहित्यिक-धुरी उन्हीं के इर्द गिर्द धुमती थी। उनकी छत्रछाया में कई कवि, कथाकार, उपन्यासकार पल-बढ़ रहे थे और उनके माध्यम से पत्र-पत्रिकाओं में छपकर उपकृत हो रहे थे। अगर यों कह लें कि पूरे रांची शहर के जितने भी साहित्यकार थे, सभी घुमक्कड़ जी के चेले थे, या यों कह लें कि घुमक्कड़ जी अपने आप को सभी का गुरु मनवा चुके थे तो, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आजकल वे मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ की भी कुछ क्षेत्रीय पत्रिकाओं में प्रधान संपादक की भूमिका अदा कर रहें थे, और अपने शिष्यों की रचनाओं को छापकर अपनी गुरु-कृपा भी प्रदान कर रहे थे। ऐसे में जाहिरन उनके अनुयायिओं की संख्या काफी बढ़ गयी थी। इसके अलावा रांची विश्वविद्यालय से जुड़ाव होने के कारण शोधार्थियों की भीड़ भी लगी होती थी। इस तरह से जिनकी साहित्यिक दुनिया इतनी समृद्ध हो, तो मजाल है कि कोई और रांची में आयोजित होने वाली गोष्ठियों की अध्यक्षता कर लेवे।

खैर, गोष्ठी प्रारम्भ हुई, सभी आलोचकों व समीक्षकों ने सुकुमार की सद्य प्रकाशित कहानी पर अपने-अपने विचार रखे। किसी ने सुकुमार की कहानी को यथार्थ से मुठभेड़ करती हुई कहानी माना, तो किसी ने कहानी को वर्तमान समाज का दर्पण माना। किसी ने कहानी में लेखकीय पीड़ा को समझने की बात कहीं, तो किसी ने लेखक के संघर्षो का वास्तविक चित्रण माना। किसी समीक्षक

ने सुकुमार की कहानी को समाजिक यथार्थ से जुड़ा बताया, तो किसी ने कथा-शिल्प व शब्द-संयोजन की तारीफ की। अभी तक की बातों को सुनकर सुकुमार जी काफी प्रसन्न हो रहे थे और मन-ही-मन मुस्कुरा भी रहे थे। गर्व से सीना चौड़ा हो रहा था। उन्हें लगा कि वाकई में सभी ने कहानी को अच्छे से पढ़ी है, तभी तो उनके द्वारा कहानी के निहितार्थ का बखान किया जा रहा है। अब लग रहा था कि यह कहानी उन्हें साहित्य जगत में स्थापित करके ही रहेगी, जैसे- 'ईदगाह' कहानी ने प्रेमचंद को और 'ठेस' कहानी ने रेणु जी को स्थापित कर दिया था। इसी तरह के दिवा-स्वप्न में सुकुमार आनंद के गोते लगाते हुए परमानंद सहोदर की प्राप्ति कर रहे थे, तभी मंच संचालक द्वारा अध्यक्षीय संबोधन हेतु आर्यभट्ट सिंह 'घुमक्कड़' को आमंत्रित किया गया था। बस इसी क्षण का तो इंतजार था सबको। अब तो सभी आलोचकों व समीक्षकों ने कहानी को सफल कहानी मान ही लिया था और लेखक को भी सफल लेखक मान लिया था, अब बस 'घुमक्कड़' जी को मोहर लगाने भर की जरूरत थी, यदि 'घुमक्कड़' जी के मुखार बिंद से यह कहानी एक बेहतर कहानी कहवा ली गयी, तो सुकुमार रांची के स्थापित लेखकों में स्थान पाने में सफल हो जायेंगे।

आर्यभट्ट सिंह 'घुमक्कड़' ने माइक पकड़ते हुए अपना अध्यक्षीय संबोधन प्रांरभ किया था, 'अभी तक शहर के मानिंद लेखकों, समीक्षकों और आलोचकों के वक्तव्य से यह बात तो स्पष्ट हो ही गयी है कि सुकुमार की यह कहानी एक सफल कहानी है और सामाजिक यथार्थ से मुठभेड़ करती हुई कहानी है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है, मगर अब तक जितनी भी बातें हुई, कहानी के संदर्भ में हुई। ...और अब तो मेरे लिये कुछ बचा ही नहीं है, इस कहानी के संदर्भ में कुछ बोलने के लिए। ...लेकिन अब मैं जो भी बातें करूंगा, वह कहानी प्रकाशित होने की पूर्व की कहानी पर बात करूंगा। आज से एक सप्ताह पूर्व, जब मेरे हाथों में समकालीन आर्यावर्त साहित्य का नवीन अंक आया, मुझे काफी प्रसन्नता हुई यह देखकर कि मेरे शहर के नवोदित कथाकार सुकुमार की कहानी छपी हुई है। मैंने तत्काल ही पत्रिका के संपादक विवेकानंद साहा जी को फोन लगाया था- अभार जताने के लिए कि उन्होंने मेरे शहर के उभरते रचनाकार को स्थान दिया है, पर उन्होंने जो प्रतिक्रिया दी, उससे मुझे अजीब-सा लगा था।'

पूरा हॉल अचानक से सन्न हो गया था, मानों जैसे सभी को सांप सूंघ गया हो। सभी को बस इस बात का इंतजार था कि आखिर संपादक ने क्या कहा होगा 'घुमक्कड़' जी को, जिससे उनको अजीब-सा लगा होगा। सुकुमार भी

अचानक से चौंक पड़े थे, आखिर संपादक ने क्या प्रतिक्रिया दी होगी, जो इतनी उर्जा के साथ पूरे हॉल को बताने के लिए मंच पर खड़े हैं-घुमक्कड़ जी।

घुमक्कड़ जी ने फिर से कहना शुरू किया था, 'साहा जी कह रहे थे, भाई घुमक्कड़ जी क्या बताऊं आपको, ...मत पूछिये। सुकुमार की कहानी पर मुझे काफी मेहनत करनी पड़ी थी। ...एक तो कहानी हस्तलिखित थी, उसमें भी इतनी सारी अशुद्धियां कि पूछिये मत। ...एकबारगी तो मन किया कि इस कहानी को कचड़े के डब्बे में डाल ही दें, लेकिन पढ़ने के बाद में लगा कि कहानी में दम है, इसलिए छापने की जहमत उठाई। पहले अशुद्धियों को शुद्ध किया, काफी कुछ प्रसंग थे, जो अनावश्यक थे, उसे हटाना पड़ा, कुछ नवीन प्रसंग जोड़ने पड़े। काफी जोड़-तोड़ करना पड़ा, तब कहीं जाकर कहानी का रूप दिया। मतलब कि 'घुमक्कड़' जी आपको क्या बताऊँ, आज तक मैंने अपने संपादकत्व काल में इतनी मेहनत नहीं की थी, जितना कि इस कहानी में करनी पड़ी। ...मुझे काफी निराशा हुई- उनकी बातों को सुनकर, लेकिन बीच-बचाव में मुझे भी कुछ कहना ही पड़ा, सो मैंने बीच में टोंकते हुए साहा जी को कहा था- हाँ, सो तो है, लेकिन लड़का है बड़ा काबिल, अपनी कल्पना से एक-से-एक नई कहानियाँ लिख डालता है। फिर साहा जी भी काफी रुचि ले रहे थे, सुकुमार पर। मैंने कह दिया कि वे भी हमारे रांची विश्वविद्यालय में एडहॉक पर पढ़ाते हैं, पाँच सौ रूपया प्रति क्लास मिल जाता है। परमानेंट बहाली नहीं है, वीसी अप्वाइंटी है। अभी तो लेखन के क्षेत्र में नया-नया ही आया है, अभी कहाँ से इतनी प्रगाढ़ता आयेगी। ...फिर उन्होंने कहा कि चलिये आपके जैसा गुरू मिल जायेगा तो एक दिन वह भी अच्छा कहानीकार बन ही जायेगा। मैंने भी हामी भर ही थी- हाँ, लगता है कि उसे भी चेला बनाना ही पड़ेगा।' इस तरह 'घुमक्कड़' जी एक गैर-जिम्मेदार वक्ता की तरह अनाप- सनाप बके जा रहे थे, जैसे उन्होंने कसम खा रखी हो कि सुकुमार को ध्वस्त करके ही छोड़ना है।

इधर सुकुमार की स्थिति ऐसी बन गयी थी कि काटो तो खून नहीं। चेहरा एकदम से उतर आया था। उसे ऐसा लग रहा था कि सरे-आम लोगों के समक्ष कोई उनका बलात्कार कर रहा हो। 'घुमक्कड़' जी के दोहरे चरित्र को देखकर सुकुमार जी हतप्रभ थे। ...आखिर किस बात की दुश्मनी निकाल रहे थे कि वे सरे-आम बेइज्जती करने पर ही उतारू हो गये। क्या कोई संपादक ऐसा भी हो सकता है, जो 'घुमक्कड़' जी से ऐसी बातें करें। यह तो संपादन नैतिकता के विरुद्ध है, कहानी नापसंद थी, तो नहीं छापते, कचड़े के डब्बे में डाल देते, जरूरी नहीं कि प्राप्त हुई सारी कहानियों को छाप ही दिया जाए। एकबारगी तो

सुकुमार का मन हुआ कि पत्रिका के संपादक विवेकानंद साहा को फोन करके झाड़ ही दे कि मेरी कहानी को नहीं छापना था तो नहीं छापते, मुझे कोई मलाल नहीं होता, लेकिन छापकर लेखक का इस तरह से सरेआम मखौल उड़ाने का क्या मतलब है ? ...न...नहीं, संपादक ऐसा नहीं कर सकता है, आखिर उसे भी तो अपने मर्यादा का ख्याल होगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि 'घुमक्कड़' जी ही नमक-मिर्च लगाकर बढ़ा-चढ़ा कर तो बोल रहे हों! फिर इस भरी महफिल में यह सब बोलने की क्या जरूरत थी। अकेले में भी तो बोल सकते थे। फोन पर बधाई तो दे सकते हैं, चिकनी-चुपड़ी बातें बोल सकते हैं, लेकिन संपादक के साथ वार्ता वाली बात नहीं बोल सकते। और फिर सभी कहानीकार व्याकरण के प्रकांड विद्वान हों, यह तो आवश्यक नहीं है। कहानीकार को वर्तनी की पूर्ण जानकारी हो, यह भी तो आवश्यक नहीं है। कहानी तो अंर्तमन से फूटती है, . ..और यह किसी के अंदर भी फूट सकती है। ...फिर अशुद्धियों को सुधारा भी तो जा सकता है। क्या 'घुमक्कड़' जी ने पैदाइसी शुद्ध रूप से लिखना आरंभ कर दिया था? ...अरे भाई, यहाँ तो बड़े-बड़े लेखको से भी कभी-कभी अशुद्धियाँ हो जाती हैं, तो फिर हम किस खेत के मूली हैं। ...खैर, ये सब उचित मान भी लिया जाय कि साहित्यकार को शुद्ध लिखना ही चाहिए, मगर किसी के निजी जीवन पर कटाक्ष करने का क्या मतलब है? सरेआम पाँच सौ रूपया प्रति क्लास वाले एडहॉक प्राध्यापक के रूप में प्रचारित करने की क्या आवश्यकता है? क्या एडहॉक प्राध्यापक की कोई मान-मर्यादा नहीं होती, या सिर्फ परमानेंट प्राध्यापक हीं अच्छे लेखक हो सकते हैं... ऐसा कोई मानक है क्या ? ...या फिर जबरदस्ती गुरू बनने के चक्कर में अपनी ओछी प्रसिद्धि पाना इनकी प्रकृति में शामिल है। ...क्या यह जरूरी है कि रांची शहर में जो भी साहित्यकार पैदा हो, वह 'घुमक्कड़' जी के छत्रछाया में ही पले-बढ़े या उन्हीं के रहमों-करम पर पत्र-पत्रिकाओं में छपे।

अब तो सुकुमार जी को धुमक्कड़ जी के चेहरे से उबकायी-सी आने लगी थी। उसका मन घृणा से भर उठा था। जो भी आलोचक-समीक्षक कहानी को सफल बता रहे थे, वो अब 'घुमक्कड़' जी के सुर में सुर मिलाना शुरू कर देगें। इसी उधेड़बुन ने सुकुमार फंसे ही थे, कि कार्यक्रम कब समाप्त हो गया, उन्हें पता ही नहीं चला। उनकी तंद्रा तो तब टूटी, जब सभी उन्हें खोखली बधाई देकर उनसे विदा हो रहे थे,. कुछ तो मुस्कुराते हुए ऐसे जा रहे थे, मानों यह कह रहे हों कि बड़े चले थे कहानीकार बनने। ढ़ोल की पोल खुल गयी न अब। संपादक का एहसान था, जो दो कौड़ी की कहानी को छापकर महान रचना बना

डाला। वरना, अभी तक तो ये शुद्ध से लिखना भी नहीं जानते जनाब। और चले थे अपनी कहानी पर गोष्ठी करवाने। अखबारों के फोटोग्राफर बंधुओं भी सुकुमार की रोनी सूरत का फोटो खींच लिया था,. और पत्रकार बंधु भी इस गोष्ठी का सारा वृत्तांत अपने कागज में कलमबद्ध कर चुके थे, कल के अखबार में नमक-मिर्च लगाकर छापने के लिए।

आर्यभट्ट सिंह 'घुमक्कड़' अपने लक्ष्य को साधकर अपने चेले-चपाटियों के साथ कार्यक्रम स्थल से रवाना हो गये थे। सुकुमार उन्हें एकटक देखता रह गया, मगर कुछ कह नहीं पाया था। उसे समझ में आ गया था कि यह सब प्रपंच उन्होंने इसी समय के लिए रचा था। समोसा-कचौड़ी वाला अपना बिल लेकर सुकुमार के समक्ष यमराज की मानिंद खड़ा हो गया था। वे उसे भुगतान कर अपने घर की ओर रवाना हो गये थे।

रास्ते में 'घुमक्कड़ जी' की कड़वी बातें उन्हें रह-रह कर साल रही थीं। ...क्या सोचकर कार्यक्रम रखवाया था और क्या हो गया। शहर के मानिंद साहित्यकारों, साहित्यप्रेमियों, पत्रकारों, शिक्षकों और-तो-और अपने ही छात्रों के बीच, जैसे किसी ने नग्न करके बलात्हरण कर लिया हो। उनकी सारी इज्जत मिट्टी में मिल गयी थी। कल के अखबारों में पता नहीं क्या-क्या छपेगा। हुं-ह, कितनी बदनामी होगी। ...और तो और विश्वविद्यालय के प्राध्यापक साथी भी कम मजाक नहीं बनायेंगे। ...उनके छात्रों के बीच उनकी इज्जत दो कौड़ी की भी नहीं रह जायेगी। छात्र जो कि उन्हें आदर व सम्मान देते थे, अब तो वे भी सुकुमार को घृणा की दृष्टि से देखेंगें। ...ऐसे में, वह तो आँख भी नहीं मिला पायेगा उन सबसे। ...न ...नहीं। इतनी भारी बेइज्जती-भरी जिदंगी से तो अच्छा है कि जिंदगी को ही खत्म कर ले।

वह आनन-फानन में घर पहुँचा था और अपने कमरे के दरवाजे को धड़ाक से बंद कर दिया था, और पंखे के सहारे गले में फंदा डालकर लटक गया था।

स्वयं की लिखी कहानी पर, स्वयं के पैसे खर्चकर, स्वयं ही आयोजक बनकर, स्वयं अपनी बेइज्जती करवाकर सुकुमार अंत में, खुद ही अपने जीवन का अंत कर परलोक की ओर कूच कर गया। आर्यभट्ट सिंह 'घुमक्कड़' द्वारा इस तरह की घटिया साजिश के तहत योजना का क्रियान्यवन करना, और उसे मौत के मुंह में ढकेलना 'छलात्कार' नहीं तो ...और क्या था ?

–अमगावाँ, डाकघर- शिला, प्रखण्ड-सिमरिया, जिला- चतरा, झारखण्ड - 825401

कहानी

चौखट

• रामेश्वर महादेव वाढेकर

स्वराज और खुशी की प्रेम कहानी सामाजिक और पारिवारिक बाधाओं के बीच खिलती है। खुशी तृतीय लिंग से संबंधित हैं, जिसके कारण समाज और परिवार के विरोध का सामना करना पड़ता है। प्रेम, संघर्ष और समर्पण के बाद स्वराज और खुशी शादी करते हैं और साथ में तृतीय लिंग के अधिकारों और समानता के लिए कार्य करते हैं। कहानी प्रेम, साहस और सामाजिक न्याय की प्रेरणा देती है।

कई दिनों से दिल की बात कहनी थी। कैसे बताऊं, समझ नहीं रहा। आज किसी भी हालात में बताऊंगा। तभी दिल को सुकून मिलेगा। वह सिग्नल पर दिखाई दी। इसके पहले कई बार दिखी थी। उसे पहली बार भी वहीं देखा। देखते ही मैं प्रेम में डूब गया। मेरे बारे में उसके क्या विचार है पता नहीं। उसे देखने हर दिन यहां आता, किंतु बोलने की हिम्मत अभी तक नहीं हुई। सामने खड़ी है नजरों के, उतने में सिग्नल छूटा। पीछे से गाड़ियां के हॉर्न बज रहे थे। मुझे सुनाई या दिखाई नहीं दिया, उसके बिना। ट्रैफिक पुलिस ने गाड़ी साइड में लगाने का इशारा किया। कुछ समय बाद गुस्से में कहा, 'आपको नियम समझ नहीं आता।'

'सर,मुझ से गलती हो गई, मैं फाइन भरने को तयार हूँ।'

'जल्दी फाइन भरो। यहां से रफा-दफा हो।'

दिल में इच्छा न होकर भी गाड़ी शुरू की। धीरे-धीरे गाड़ी चला रहा था, उसकी तरफ देखकर। गाड़ी की तरफ वह आती दिखाई दी। मैंने गाड़ी खड़ी की। गाड़ी में बैठा रहा। उसने गाड़ी का शीशा खटखटाया। मैंने दरवाजे का शीशा नीचे किया, बाद में नीचे उतरा। उसकी तरफ देखता रहा। वह बोले जा रही थी, मैं सिर्फ सुनता रहा।

उसने जोर से कहा, 'मैं आपको बहुत दिनों से देख रही हूँ। आप अनेक बार सिग्नल छूटने के पश्चात भी वहीं खड़े रहते हैं। आपसे पुलिस वाला

किस तरह बातें करता है, यह मैंने सुना, देखा। आप संस्कारी व्यक्ति दिखते हैं, दोबारा ऐसा मत करना।'

मैं देखता ही रहा। कुछ समय बाद मैंने कहा, 'जी, दोबारा गलती नहीं होगी।' जोरों से सांस ली, और कुछ कहने की हिम्मत जुटा रहा था, लेकिन कह नहीं पाया।'

उसने कहा, 'आपको कुछ कहना है।'

'जी। कैसे बताऊं, समझ नहीं आ रहा।'

'जो दिल में है, बता दो। मुझे बुरा नहीं लगेगा। आदत पड़ी है सुनने की।'

'खुशी, मुझे आपसे प्रेम है।'

'आप क्या कह रहे हैं, पता है आपको। होश में हैं आप।'

'हाँ। मैं होश में हूँ। मुझे कई दिनों से दिल की बात बतानी थी। मैं डर के मारे नहीं बता पाया। मुझे समाज, परिवार का डर नहीं था, आपको कैसा लगेगा इस बात का डर था।'

'स्वराज,मैं आप से प्रेम नहीं करती।'

'क्यों? मुझमें कमियां हैं, होगी भी! हर मनुष्य में कुछ कमियां रहती हैं। मैं आपको पसंद नहीं हूँ, तो आपको भूलाने की कोशिश करूंगा।'

'ऐसा कुछ नहीं। आपको कोई भी लड़की पसंद करेगी। आपमें कई अच्छे गुण हैं। मैं ही आपके लायक नहीं हूँ।'

'मुझे आप पसंद हैं। मैं आपसे विवाह करना चाहता हूँ। सोचने के लिए समय चाहिए, तो आप लीजिए। मुझे आपकी हाँ का इंतजार रहेगा।'

'स्वराज, मैं हिजड़ा, छक्का, किन्नर, नपुंसक, थर्ड जेंडर, तृतीय पंथी आदि नामों से प्रसिद्ध हूँ। मुझे मेरे परिवार ने नहीं स्वीकारा, तो समाज, आपका परिवार कैसे स्वीकार करेगा।'

'खुशी, आप कौन हो? यह मेरे मायने नहीं रखता। आप मुझे पसंद है। मैं आपको दिल से चाहता हूँ। मैं आपके बिना नहीं जी सकता।'

'मैं ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हूँ।'

'मुझे कोई दिक्कत नहीं। मैं आपको पढ़ाऊंगा। मेरी मां समाजसेविका है। हमारे रिश्तें को स्वीकार करेगी। मां भी तृतीय पंथियों के लिए निरंतर कार्य करती आई है।'

'मुझे अभी से डर लग रहा है कि आपकी मां ने शादी की अनुमति नहीं दी तो।'

'मैं मां, परिवार को मनाऊंगा। मैं आपके साथ हूँ। रही बात समाज की, इससे मुझे कोई मतलब नहीं।'

'आप मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार कर रहें हो, मैं भाग्यशाली हूँ। आप मेरे लिए इतना कर रहें हैं, मुझे बहुत खुशी हुई। मैं तैयार हूँ शादी के लिए। किंतु मेरा साथ कभी मत छोड़ना। साथ छोड़ा तो मैं जी नहीं सकती। पूरी तरह टूटकर बिखर जाऊंगी।'

'साथ कभी नहीं छोड़ूंगा।'

'स्वराज, तृतीय पंथियों के बुरे हालात है।उन का जीवन नरक बना है। समाज बुरी नजरों से देखता है उनके तरफ। वे जीकर भी मरे हुए हैं। वेश्या से भी बद्तर जिंदगी है उनकी। मैंने भी बहुत वेदना सही है। लोग क्या-क्या कहते हैं और क्या-क्या करते हैं, मुझे मालूम है। मैं बयां भी नहीं कर सकती। हम सिगनल, रेल में शौक से खड़े नहीं रहते, हमारी मजबूरी है। उन्हें कोई काम पर रखता नहीं। रख भी लिया तो शोषण ही करता है, शारीरिक और मानसिक। मैं उनके के लिए कार्य करना चाहती हूँ।'

'तुम्हारा साथ निरंतर दूंगा। मैं भी उनके अधिकार के लिए संघर्ष करता रहूंगा।'

'स्वराज, अभी तक तृतीय पंथियों के लिए कई कानून, बिल पास हुए, किंतु कोई फायदा नहीं। अप्रैल 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने किन्नर को तीसरे लिंग के रूप में पहचान दी। किन्नर को जन्म प्रमाणपत्र, राशनकार्ड, पासपोर्ट, ड्राइविंग लाइसेंस आदि में तीसरे लिंग के तौर पर पहचान हासिल करने का अधिकार मिला। विवाह करना, तलाक देना, संतान को गोद लेना आदि अधिकार प्राप्त हुए। कुछ वर्ष पश्चात यानी 2016 में ट्रांसजेंडर पर्सन्स बिल पास हुआ। जिससे उन्हें शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्र में खुलकर जीने का अधिकार मिला।

कालांतर में यानी 2019 में ट्रांसजेंडर व्यक्ति अधिनियम बना। इससे तृतीय पंथी के अधिकार का संरक्षण होने वाला था। इस घटनाक्रम पर प्रकाश डालने के पश्चात समझ आता है कि तृतीय-पंथियों की समस्या कम नहीं हुई, बढ़ी है।'

'खुशी, आप सही कह रही हैं, कानून सिर्फ कागज पर है, अस्तित्व में नहीं। कानून का अमल हो, इस लए हम संघर्ष करते रहेंगे।'

'स्वराज, तृतीय लिंग को सही मायने में मान्यता ही नहीं मिली। बस, रेल, विमान आदि में सफर करने के लिए आरक्षित सीट करने की सुविधा उपलब्ध रहती है, उसमें थर्ड जेंडर पर्याय ही नहीं। इससे उनका अस्तित्व समझ आता हैं।'

'सही है खुशी। मैंने भी थर्ड जेंडर के संदर्भ में जानकारी हासिल की है। उनकी दयनीय अवस्था है। भारत में वर्ष 2009 में लगभग थर्ड जेंडर वर्ग की संख्या पांच लाख थी, यह मैंने एक रिपोर्ट में पढ़ा है। उन्हें न्याय दिलाना ही हमारा मकसद हैं। बहुत समय बीता, हम रास्ते पर खड़े हैं। गहन विषय पर चर्चा हुई। अच्छा लगा। चलता हूँ, मां राह देखती होगी। मां को सब बताता हूँ, हमारे संदर्भ में। कुछ ही दिनों में मां आप से मिलने आएगी।'

खुशी प्रसन्न थी। मन ही मन हँसते घर जा रही थी। स्वराज की मां कब आएगी। मैं उनकी अच्छी बहू बनूंगी। परिवार में घूलमिलकर रहूंगी। स्वराज को शिकायत करने का मौका नहीं दूंगी। इन सपनों में खुशी डूब गयी। घर कब आया पता भी नहीं चला।

वह रोज स्वराज की मां का इंतजार करती। बहुत दिन गुजरे, स्वराज की मां नहीं आई। स्वराज भी दिखाई नहीं दिया। खुद को ही समझाती, होंगे कुछ काम में। एक दिन सुबह-सुबह बस्ती में एक स्त्री आई। नाम, घर का पता पूछने लगी। खुशी दूर से सब देख रही थी। वह घर की तरफ आती दिखाई दी।खुशी ने खुद को ठीक-ठाक किया। बेल बजी। खुशी ने दरवाजा खोला। तो सामने महिला दिखाई दी। खुशी ने नमस्कार किया। अंदर बुलाया। चाय पानी की। कुछ समय बाद खुशी ने पूछा, 'आपका नाम! क्या काम है?'

स्त्री ने कहा, 'मैं स्वराज की मां हूँ।'

'ओह! आप। नमस्कार मां जी।' -खुशी ने प्यार से कहा।

'आप क्या करती है?'

'स्वराज ने बताया नहीं।'

'बताया...। तेरे मुंह से सुनना है।'

'मैं ग्रेजुएट हूँ। लेकिन....'

'लेकिन क्या? बताओ।'

'मैं किन्नर हूँ।'

'तेरी मेरे बेटे से शादी...यह सोच भी कैसे सकती है।'

'हम दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। साथ रहना चाहते हैं।'

'यह कभी संभव नहीं।'

'आखिर क्यों मां जी?'

'हम ठहरे बड़े खानदान के। तू है कि....'

'इसमें मेरा क्या कसूर। आप तो तृतीय पंथियों के लिए कार्य करती हैं। और विचार ऐसे।'

'विचार, कार्य छोड़ दो। मैं क्या कहती हूँ, गौर से सुनो। मेरे बेटे की जिंदगी से दूर जाने के लिए तुझे क्या चाहिए?'

'मां जी, मुझे स्वराज चाहिए। और कुछ नहीं।'

'उसे छोड़कर, कुछ भी!'

'मां जी, आप जैसे कहेंगी, वैसे मैं रहूंगी। मुझे आपके बेटे से अलग मत कीजिए। मैं उसके बिना जी नहीं सकती।'

'तू सब कुछ करेगी, मेरे परिवार और उसके लिए। लेकिन मेरे बेटे को पिता होने का सुख कभी नहीं दे सकती।'

यह सुनकर खुशी निःशब्द रही। उसे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। सिर्फ स्वराज की मां तरफ देखती रही, और बेहोश हो गई। घर में सन्नाटा छा गया, जैसे घर में कोई मरा हो। कुछ देर बाद स्वराज की मां चली गई।

मां शादी को अनुमति देगी या नहीं, यह सवाल स्वराज को सता रहा था। घर पर अकेला था वह, चिंता में डूबा। इतने में घर के बाहर गाड़ी की आवाज आई। वह जाग गया। खिड़की से बाहर देखा तो मां की गाड़ी दिखाई दी। कुछ समय बाद मां ने बेल बजाई। स्वराज ने जल्द से दरवाजा खोला। मां

कुछ भी न बोली, और हॉल में जाकर बैठ गई। चेहरे पर गुस्सा था। स्वराज ने कहा, 'मां पानी लाऊं।'

'कोई जरूरत नहीं।'

'मां, आप शांत हो जाइए। मुझसे कोई गलती हुई?'

'तुमसे नहीं, मुझसे हुई, संस्कार देने में।'

'मां क्या हुआ? साफ-साफ बताइए।'

'तुझे लड़की नहीं मिली, प्रेम करने के लिए।'

'मां, पता था, आप ऐसे ही बोलेंगी। इसी कारण बताया नहीं था मैंने।'

'स्वराज, लड़की से शादी कर।'

'नहीं! मैं उसी से शादी करूंगा। अन्यथा किसी से नहीं।'

'परिवार की इज्जत मिट्टी में मिलानी है तुझे, यही ठान लिया है न।'

'मां, तुम्हें जो समझना है समझो। मैं कोई गलत कार्य नहीं कर रहा।'

'तुझे शादी उसी से करनी है, तो घर से निकल जा। कभी चेहरा मत दिखाना मुझे। मेरी मृत्यु हो जाएगी, तब भी मत आना।'

'मां, खुद का ख्याल रखना। हो सके तो मुझे माफ करना, क्योंकि मैं तुम्हारी नजर में गुनहगार हूँ।'

स्वराज घर से निकल पड़ा, खुशी के बस्ती की तरफ। पैदल। समय रात का था। दो बजे घर पहुंचा। दरवाजा खटखटाया। देर से दरवाजा खुला। सामने स्वराज को देखकर खुशी घबरा गई। उसे लगा कि स्वराज मां से झगड़ा करके ही आया है। उसे अंदर लिया। पानी दिया। कुछ समय के पश्चात खुशी ने पूछा, 'क्या हुआ? इतनी रात आप...'

'खुशी, मैंने जो सोचा था वैसे कुछ नहीं हुआ। मां ने शादी को नकार दिया। मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ, इसी वजह से मैं मां का घर छोड़कर आया हूँ।'

'यह आपने अच्छा नहीं किया। मां का दिल दुखाना नहीं चाहिए था।'

'मेरे पास दूसरा कोई रास्ता नहीं था। मैं घर छोड़कर आया हूँ, मां के प्यार को नहीं। सब ठीक-ठाक होने के पश्चात घर जाऊंगा। खुशी, आपकी अनुमति हो तो हम कल कोर्ट-मैरिज करेंगे।'

'जो आपको सही लगे।'

दोस्तों की सहायता से शादी हुई। जिंदगी की नई शुरुआत की। किराए के घर में रहने लगे। कुछ वर्ष बाद स्वराज डाक्टर बना। शहर के अस्पताल में जॉब करने लगा। खुशी ने भी आगे की पढ़ाई जारी रखी। कालांतर से बैंक में शाखा प्रमुख पद पर विराजमान हुई। काम से समय निकालकर तृतीय-पंथियों के लिए निरंतर कार्य करती रही। कार्य में स्वराज भी सहयोग देता रहा। देखते-देखते दोनों ने बहुत प्रगति की। स्वराज ने खुद का अस्पताल बनाया। खुशी ने तृतीय-पंथियों के लिए 'समानता ट्रस्ट' नामक संस्था की स्थापना की। वहां अनेक तृतीय-पंथी रहने लगे। जिन्हें कोई स्वीकार नहीं करता, उन्हें समानता ट्रस्ट स्वीकारता था। छूट्टी के दिन खुशी वहीं रहती।

शादी को दस वर्ष हो गए। घर में संतान न होने से खुशी दुःखी रहने लगी। किसी को बता भी नहीं पाती। एक दिन स्वराज से हिम्मत करके कहने लगी, 'जिंदगी में संतान आवश्यक है। आपको कभी नहीं लगा, संतान हो।'

'खुशी, समाज में अनेक स्त्रियां हैं जो बच्चे को जन्म नहीं दे सकती, स्त्री होकर भी। तू दुःखी क्यों होती है। तेरी शरीर रचना ही ऐसी है। तू संतान देने में असमर्थ हैं, इसमें तूम्हारा क्या दोष। हम अनाथालय से संतान लाएंगे, वह भी लड़की। माता-पिता का दायित्व निभाएंगे।'

'आप बहुत समझदार है। साथ ही परिवर्तनवादी भी! मैं समाज की चौखट में कैद थी। मेरी जैसी अनेक हैं। परंपरा ने गुलाम बनाया था मुझे, अंधश्रद्धा के नाम पर। आपने सामाजिक चौखट तोड़कर मुझसे शादी की। खुद के पैरों पर मुझे खड़ा किया। व्यक्तित्व को पहचान दिलाई। आज मैं जो कुछ हूँ, आपकी वजह से।'

'खुशी, मुझे जो अच्छा लगा, मैंने किया। मुझसे पहले भी कई लोगों ने तृतीय-पंथियों से विवाह किया है, इसमें नया कुछ नहीं। यह समय की मांग है। समाज की मानसिकता बदलनी चाहिए। हमें आप जैसे व्यक्तियों का सहारा बनना है। उन्हें काबिल बनाना है। भले ही समाज की मानसिकता न बदले, हम निरंतर कार्य करते रहेंगे।'

कलम को नमन

हजारी प्रसाद द्विवेदी

हजारी प्रसाद द्विवेदी (19 अगस्त, 1907 – 19 मई, 1979) हिन्दी के महान निबन्धकार, उपन्यासकार, आलोचक और शिक्षक थे। बलिया के 'आरत दुबे का छपरा' में जन्मे द्विवेदी जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कार्य किया और वाराणसी को अपनी कर्मभूमि बनाया। वे हिंदी ललित निबंध के सर्वश्रेष्ठ स्तंभ माने जाते हैं। उनके निबंध व्यक्तिगत, स्वाधीन और संवादात्मक होते हैं, जिनमें कल्पना, विनोद, गहन चिंतन और आत्मान्वेषण का सुंदर समन्वय होता है। द्विवेदी जी के अनुसार, निबंध में मनुष्य प्रधान होता है, शास्त्र गौण। उनके निबंधों में ललित निबंध की स्वच्छंदता, कहानीपन और भावुकता स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी प्रमुख रचनाओं में बाणभट्ट, कबीर, अशोक के फूल, हिंदी साहित्य की भूमिका, आदि शामिल हैं। वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के उपसभापति, 'खोज विभाग' के निर्देशक और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादक भी रहे। भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया। इनका साहित्यिक योगदान हिंदी साहित्य के लिए अमूल्य और प्रेरणादायक है।

निबंध

अशोक के फूल

• हजारी प्रसाद द्विवेदी

यह निबंध अशोक के फूलों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, इतिहास और साहित्य की गहरी व्याख्या करता है। अशोक का फूल न केवल प्रकृति की सुंदरता का प्रतीक है, बल्कि यह प्राचीन धर्म, रस, और सांस्कृतिक संघर्षों का भी सूचक है। लेखक ने इस पुष्प के वैभव, उसके पीछे छिपे इतिहास, और उसकी उपेक्षा पर विचार किया है। यह उस समय की क्रूरता, सभ्यता के उतार-चढ़ाव, और जीवन की जिजीविषा को दर्शाता है, साथ ही यह भी जताता है कि कैसे कुछ सुंदर और महत्वपूर्ण चीजें भी समय के साथ भुला दी जाती हैं।

अशोक में फिर फूल आ गए है। इन छोटे-छोटे, लाल-लाल पुष्पों के मनोहर स्तबकों में कैसा मोहन भाव है। बहुत सोच समझकर कंदर्प देवता ने लाखों मनोहर पुष्पों को छोड़कर सिर्फ पाँच को ही अपने तूणीर में स्थान देने योग्य समझा था। एक यह अशोक ही है। लेकिन पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है। इसलिए नहीं कि सुंदर वस्तुओं को हतभाग्य समझने में मुझे कोई विशेष रस मिलता है। कुछ लोगों को मिलता है। वे बहुत दूरदर्शी होते हैं। जो भी सामने पड़ गया, उसके जीवन के अंतिम मुहूर्त तक का हिसाब वे लगा लेते हैं। मेरी दृष्टि इतनी दूर तक नहीं जाती। फिर भी मेरा मन इस फूल को देखकर उदास हो जाता है। असली कारण तो मेरे अंतर्यामी ही जानते होंगे, कुछ थोड़ा सा मैं भी अनुमान कर सका हूँ। बताता हूँ।

भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी, इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार हैं। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था, परंतु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है वह पहले कहाँ था। उस प्रवेश में नववधू के गृह प्रवेश की भांति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता और सुकुमारता है। फिर एकाएक मुसलमानी सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ ही साथ यह मनोहर पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया। नाम तो लोग बाद में भी लेते थे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध,

विक्रमादित्य का। अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला वह अपूर्व था। सुंदरियों के आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ गुना बढ़ा देता था। वह महादेव के मन में क्षोभ पैदा करता था, मर्यादा पुरुषोत्तम के चित्त में सीता का भ्रम पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कंधे पर से ही फूट उठता था। अशोक किसी कुशल अभिनेता देवता के एक इशारे पर कंधे पर से ही फूट उठता था। अशोक किसी कुशल अभिनेता के समान झम से रंगमंच पर आता है और दर्शकों को अभिभूत करके खप-से निकल जाता है। क्यों ऐसा हुआ? कंदर्प देवता के अन्य बाणों की कदर तो आज भी कवियों की दुनिया में ज्यों-की-त्यों है। अरविंद को किसने भुलाया, आम कहाँ छोड़ा गया और नीलोत्पल की माया को कौन काट सका? नवमल्लिका की अवश्य ही अब विशेष पूछ नहीं है रू किंतु उसकी इससे अधिक कदर कभी थी भी नहीं। भुलाया गया है अशोक। मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस-साधना के पिछले हजारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी? सहृदयता क्या लुप्त हो गई थी? कविता क्या सो गई थी? ना, मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है। जले पर नमक तो यह है कि एक तरंगायित पत्रवाले निफले पेड़ को सारे उत्तर भारत में अशोक कहा जाने लगा। याद भी किया तो अपमान करके।

लेकिन मेरे मानने-न-मानने से होता क्या है? ईसवी सन के आरंभ के आस-पास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में अद्भुत महिमा के साथ आया था। उसी समय शताब्दियों के परिचित यक्षों और गंधर्वों ने भारतीय धर्म साधना को एकदम नवीन रूप में बदल दिया था। पंडितों ने शायद ठीक ही सुझाया है कि गंधर्व और कंदर्प वस्तुतः एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण हैं। कंदर्प देवता ने यदि अशोक को चुना है तो यह निश्चित रूप से एक आर्येतर सभ्यता की देन है। इन आर्येतर जातियों के उपास्य वरुण थे, कुबेर थे, बज्रपाणि यक्षपति थे। कंदर्प कामदेवता का नाम हो गया है, तथापि है वह गंधर्व का ही पर्याय। शिव से भिड़ने जाकर एक बार यह पिट चुके थे, विष्णु से डरते रहते थे और बुद्धदेव से भी टक्कर लेकर लौट आए थे। लेकिन कंदर्प देवता हार माननेवाले जीव न थे। बार-बार हारने पर भी वह झुके नहीं। नए-नए अस्त्रों का प्रयोग करते रहे। अशोक शायद अंतिम अस्त्र था। बौद्ध धर्म को इस नए अस्त्र से उन्होंने घायल कर दिया, शैवमार्ग को अभिभूत कर दिया

और शक्ति साधना को झुका दिया। वज्रयान इसका सबूत है, कौल साधना इसका प्रमाण है और कापालिक मत इसका गवाह है।

रवींद्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' कहा है। विचित्र देश है यह। असुर आए, आर्य आए, शक आए, हूण आए, नाग आए, यक्ष आए, गंधर्व आए- न जाने कितनी मानव जातियां यहाँ आईं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गईं। जिसे हम हिंदू रीति-नीति कहते है, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है। एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है। अशोक की भी अपनी स्मृति परंपरा है। आम की भी है, बकुल की भी है, चंपे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है, उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है? न जाने किस बुरे मुहूर्त में मनोजन्मा देवता ने शिव पर बाण फेंका था। शरीर जलकर राख हो गया और 'वामन-पुराण' (षष्ठ अध्याय) की गवाही पर हमें मालूम है कि उनका रत्नमय धनुष टूटकर खंड-खंड हो धरती पर गिर गया। जहाँ मूठ थी, वह स्थान रुक्म-मणि से बना था, वह टूटकर धरती पर गिरा और चंपे का फूल बन गया। हीरे का बना हुआ जो नाह-स्थान था, वह टूटकर गिरा और मौलसरी के मनोहर पुष्पों में बदल गया। अच्छा ही हुआ। इंद्रनील मणियों का बना हुआ कोटि देश भी टूट गया और सुंदर पाटल पुष्पों में परिवर्तित हो गया। यह भी बुरा नहीं हुआ। लेकिन सबसे सुंदर बात यह हुई कि चंद्रकांत मणियों का बना हुआ मध्य देश टूटकर चमेली बन गया और विद्रुम की बनी निम्नतर कोटि बेला बन गई, स्वर्ग को जीतनेवाला कठोर धनुष जो धरती पर गिरा तो कोमल फूलों में बदल गया। स्वर्गीय वस्तुएं धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होतीं।

परंतु मैं दूसरी बात सोच रहा है या इस कथा का रहस्य क्या है? यह क्या पुराणकार की सुकुमार कल्पना है या सचमुच से फूल भारतीय संसार में गंधर्वों की देन हैं? एक निश्चित काल के पूर्व इन फूलों की चर्चा हमारे साहित्य में मिलती भी नहीं। सोम तो निश्चित रूप से गंधर्वों से खरीदा जाता था। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ की विधि में यह विधान सुरक्षित रह गया है। ये फूल भी क्या उन्हीं से मिले? कुछ बातें तो मेरे मस्तिष्क में बिना सोचे ही उपस्थित हो रही हैं। यक्षों और गंधर्वों के देवता कुबेर, सोम, अप्सराएँ यद्यपि बाद के ब्राह्मण ग्रंथों में भी स्वीकृत हैं, तथापि पुराने साहित्य में अपदेवता के रूप में ही मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में तो बुद्धदेव को ये कई बार बाधा देते हुए बताए गए हैं। महाभारत में ऐसी अनेक कथाएँ आती है जिनमें संतानार्थिनी स्त्रियाँ वृक्षों के अपदेवता यक्षों

के पास संतान कामिनी होकर जाया करती थी। यक्ष और यक्षिणी साधारणतः बिलासी और उर्वरता जनक देवता समझे जाते थे। कुबेर तो अक्षय निधि के अधीश्वर भी है। 'यक्ष्मा' नामक रोग के साथ भी इन लोगों का संबंध जोड़ा जाता है। भरहुत, बोधगया, साँची आदि में उत्कीर्ण मूर्तियों में संतानार्थिनी स्त्रियों का यक्षों के सान्निध्य के लिए वृक्षों के पास जाना अंकित है। इन वृक्षों के पास अंकित मूर्तियों की स्त्रियाँ प्रायः नग्न हैं, केवल कटिदेश में एक चौड़ी मेखला पहने हैं। अशोक इन वृक्षों में सर्वाधिक रहस्यमय है। सुंदरियों के चरण-ताड़न से उसमें दोहद का संचार होता है और परवर्ती धर्म-ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों के भक्षण से स्त्री की संतान-कामना फलवती होती है। 'अशोक-कल्प' में बताया गया है कि अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं- सफेद और लाल। सफेद तो तांत्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहृत होता है और लाल स्मरवर्धक होता है। इन सारी बातों का रहस्य क्या है? मेरा मन प्राचीन काल के कुंझटिकाच्छन्न आकाश में दूर तक उड़ना चाहता है। हाय, पंख कहाँ हैं?

यह मुझे प्राचीन युग की बात मालूम होती है। आर्यों का लिखा हुआ साहित्य ही हमारे पास बचा है। उसमें सबकुछ आर्य-दृष्टिकोण से ही देखा गया है। आर्यों से अनेक जातियों का संघर्ष हुआ। कुछ ने उनकी अधीनता नहीं मानी, वे कुछ ज्यादा गर्वीली थी। संघर्ष खूब हुआ। पुराणों में इसके प्रमाण हैं। यह इतनी पुरानी बात है कि संघर्षकारी शक्तियां बाद में देवयोनि जात मान ली गईं। पहला संघर्ष शायद असुरों से हुआ। यह बड़ी गर्वीली जाति थी। आर्यों का प्रभुत्व इसने कभी नहीं माना। फिर दानवों, दैत्यों और राक्षसों से संघर्ष हुआ। गंधर्वों और यक्षों से कोई संघर्ष नहीं हुआ। वे शायद शांतिप्रिय जातियां थीं। भरहुत, साँची, मथुरा आदि में प्राप्त यक्षिणी-मूर्तियों की गठन और बनावट देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये जातियाँ पहाड़ी थीं। हिमालय का प्रदेश ही गंधर्व, यक्ष और अप्सराओं की निवास भूमि है। इनका समाज संभवतः उस स्तर पर था, जिसे आजकल के पंडित श्पुनालुअन सोसाइटीश कहते हैं। शायद इससे भी अधिक आदिम। परंतु वे नाच गान में कुशल थे। यक्ष तो धनी भी थे। वे लोग वानरों और भालुओं की भांति कृषि-पूर्व स्थिति में भी नहीं थे और राक्षसों और असुरों की भांति व्यापार वाणिज्यवाली स्थिति में भी नहीं। वे मणियों और रत्नों का संधान जानते थे, पृथ्वी के नीचे गड़ी हुई निधियों की जानकारी रखते थे और अनायास धनी हो जाते थे। संभवतः इसी कारण उनमें विलासिता की मात्रा अधिक थी। परवर्ती काल में यह बहुत सुखी जाति जाती थी। यक्ष और गंधर्व एक ही

श्रेणी के थे, परंतु आर्थिक स्थिति दोनों की थोड़ी भिन्न थी। किस प्रकार कंदर्प देवता को अपनी गंधर्व सेना के साथ इंद्र का मुसाहिब बनना पड़ा, वह मनोरंजक कथा है। पर यहाँ वह सब पुरानी बातें क्यों रटी जाए? प्रकृत यह है कि बहुत पुराने जमाने में आर्य लोगों को अनेक जातियों से निपटना पड़ा था। जो गर्वीली थीं, हार मानने को प्रस्तुत नहीं थी, परवर्ती साहित्य में उनका स्मरण घृणा के साथ किया गया और जो सहज ही मित्र बन गईं, उनके प्रति अवज्ञा और उपेक्षा का भाव नहीं रहा। असुर, राक्षस, दानव और दैत्य पहली श्रेणी में, तथा यक्ष, गंधर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, वानर, भालू आदि दूसरी श्रेणी में आते हैं। परवर्ती हिंदू समाज इन सबको बड़ी अद्‌भुत शक्तियों का आश्रय मानता है, सबमें देवता बुद्धि का पोषण करता है।

अशोक वृक्ष की पूजा इन्हीं गंधर्वों और यक्षों की देन है। प्राचीन साहित्य में इस वृक्ष की पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। असल पूजा अशोक की नहीं, बल्कि उसके अधिष्ठाता कंदर्प देवता की होती थी। इसे 'मदनोत्सव' कहते थे। महाराजा भोज के 'सरस्वती-कंठाभरण' से जान पड़ता है कि यह उत्सव त्रयोदशी के दिन होता था। 'मालविकाग्निमित्र' और 'रत्नावली' में इस उत्सव का बड़ा सरस मनोहर वर्णन मिलता है। मैं जब अशोक के लाल स्तबकों को देखता हूँ तो मुझे वह पुराना वातावरण प्रत्यक्ष दिखाई दे जाता है। राजघरानों में साधारणतः रानी ही अपने सनूपुर चरणों के आघात से इस रहस्यमय वृक्ष को पुष्पित किया करती थीं। कभी-कभी रानी अपने स्थान पर किसी अन्य सुंदरी को भी नियुक्त कर दिया करती थीं। कोमल हाथों में अशोक-पल्लवों का कोमलतर गुच्छ आया, अलक्तक से रंजित नूपुरमय चरणों के मृदु आघात से अशोक का पाद देश आहत हुआ नीचे हल्की रुनझुन और ऊपर लाल फूलों का उल्लास। किसलयों और कुसुम स्तबकों की मनोहर छाया के नीचे स्फटिक के आसन पर अपने प्रिय को बैठाकर सुंदरियाँ अबीर, कुंकुम, चंदन और पुष्प संभार से पहले कंदर्प देवता की पूजा करती थीं और बाद में सुकुमार भंगिमा से पति के चरणों पर वसंत पुष्पों की अंजलि बिखेर देती थीं। मैं सचमुच इस उत्सव को मादक मानता हूँ। अशोक के स्तबकों में वह मादकता आज भी है, पर पूछता कौन है? इन फूलों के साथ क्या मामूली स्मृति जुड़ी हुई हैं? भारतवर्ष का सुवर्ण-युग इस पुष्प के प्रत्येक दल में लहरा रहा है।

कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद

अशोक से उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।

अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परंतु है वह उस विशाल सामंत-सभ्यता की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त से स-सार कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों-करोड़ों की उपेक्षा से समृद्ध हुई थी। वे सामंत उखड़ गए, समाज ढह गए, और मदनोत्सव की धूमधाम भी मिट गई। संतान कामिनियों को गंधर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा - पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली दुर्गा ने यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गई, अशोक पीछे छूट गया।

मुझे मानव जाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती बहाती यह जीवन धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सबकुछ में मिलावट है, सबकुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा) वह गंगा की अबाधित अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संसार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सबकुछ बह जाते हैं। जितना कुछ इस जीवनी-शक्ति को समर्थ बनाता है, उतना उसका अंग बन जाता है, बाकी फेंक दिया जाता है। धन्य हो महाकाल, तुमने कितनी बार मदनदेवता का गर्व-खंडन किया है, धर्मराज के कारागार में क्रांति मचाई है, यमराज के निर्दय तारल्य को पी लिया है, विधाता के सर्वकर्तृत्व के अभिमान को चूर्ण किया है। आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्मांचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है, उसमें का कितना भाग तुम्हारे कुंठनृत्य से ध्वस्थ हो जाएगा, कौन जानता है। मनुष्य की जीवन धारा फिर भी अपनी मस्तानी चाल से चलती जाएगी। आज अशोक के पुष्प स्तबकों को देखकर मेरा मन उदास हो गया है, कल न जाने किस वस्तु को देखकर किस सहृदय के हृदय में उदासी की रेखा खेल उठेगी। जिन बातों को मैं अत्यंत मूल्यवान समझ रहा हूँ और जिनके प्रचार के लिए चिल्ला-चिल्लाकर

गला सुखा रहा हूँ, उनमें कितनी जिएँगी और कितनी बह जाएंगी, कौन जानता है। मैं क्या शोक से उदास हुआ हूँ? माया काटे कटती नहीं। उस युग के साहित्य और शिल्प मन की मसले दे रहे हैं। अशोक के फूल ही नहीं, किसलय भी हृदय को कुरेद रहे हैं। कालिदास जैसे कल्प कवि ने अशोक के पुष्प को ही नहीं, किसलयों को भी मदमत्त करनेवाला बताया था- अवश्य ही शर्त यह थी कि वह दयिता (प्रिया) के कानों में झूम रहा हो- 'किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिता श्रवणार्पितः।' परंतु शाखाओं में लंबित वायुलुलित किसलयों में भी मादकता है। मेरी नस-नस से आज अरुण उल्लास की झंझा उत्थित हो रही है। मैं सचमुच उदास हूँ।

आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, क्या ऐसी ही बनी रहेगी? सम्राटों सामंतों ने जिस आचार-निष्टा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था, वह लुप्त हो गई, धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्ध समझा था, वह समाप्त हो गया, मध्ययुग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भांति उड़ गई तो क्या यह मध्य युग के कंकाल में लिखा हुआ व्यावसायिक युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा? महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी। उसके कुंठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ-न-कुछ लपेटकर ले जाएगी। सब बदलेगा। सब विकृत होगा- सब नवीन बनेगा।

भगवान बुद्ध ने मार-विजय के बाद वैरागियों की पलटन खड़ी की थी। असल में 'मार' मदन का ही नामांतर है। कैसा मधुर और मोहक साहित्य उन्होंने दिया। पर न जाने कब यक्षों के वज्रपाणि नामक देवता इस वैराग्यप्रवण धर्म में घुसे और बोधिसत्वों के शिरोमणि बन गए। फिर वज्रयान का अपूर्व धर्म-मार्ग प्रचलित हुआ। त्रिरत्नों में मदन देवता ने आसन पाया। वह एक अजीब आँधी थी। इसमें बौद्ध बह गए, शैव बह गए, शाक्त बह गए। उन दिनों 'श्री सुंदरी साधनतत्पराणां योगश्च करस्थ एवं' की महिमा प्रतिष्ठित हुई। काव्य और शिल्प के मोहक अशोक ने अभिचार में सहायता दी। मैं अचरज से इस योग और भोग की मिलन लीला को देख रहा हूँ। यह भी क्या जीवनी शक्ति का दुर्दम अभियान था। कौन बताएगा कि कितने विध्वंस के बाद इस अपूर्व धर्म मत की सृष्टि हुई थी? अशोक-स्तबक का हर फूल और हर दल इस विचित्र परिणति की परंपरा ढोए आ रहा है। कैसा झबरा सा गुल्म है।

मगर उदास होना भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ

भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरंभ हो जाता– मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता– विज्ञान का सवेग धावन चल निकलता, तो बड़ा बुरा होता। हम पिस जाते। अच्छा ही हुआ जो वह बदल गई। पूरी कहाँ बदली है? पर बदल तो रही है। अशोक का फूल तो उसी मस्ती से हँस रहा है। पुराने चित्त से इसको देखनेवाला उदास होता है। वह अपने को पंडित समझता है। पंडिताई भी एक बोझ है– जितनी ही भारी होती है, उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है, तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्था में उदास में उदास भी नहीं करती। कहाँ। अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूम रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे। अपने ढंग से। मैं भी ले सकता हूँ, अपने ढंग से। उदास होना बेकार है।

साभार : अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, संस्करण 1948

लेख

वर्षा में भीगता हिंदी साहित्य

• अशोक पटेल 'आशु'

यह लेख वर्षा ऋतु के सौंदर्य और उसके साहित्यिक चित्रण को दर्शाता है। सभी साहित्यिक युगों के कवियों ने वर्षा को सिर्फ मौसम नहीं, बल्कि प्रेम, विरह, उल्लास और प्रकृति के उत्सव के रूप में चित्रित किया है। सेनापति, जायसी, तुलसी, पंत और नागार्जुन जैसे कवियों की रचनाएं वर्षा को जीवंत बना देती हैं। लेख बताता है कि हिंदी साहित्य में वर्षा ऋतु एक काव्यात्मक पर्व के रूप में सदैव समृद्ध रही है।

वर्षा ऋतु का आगमन होते ही हिंदी साहित्य के कवियों का स्मरण हुए बिना वह मौसम अधूरा प्रतीत होता है। चाहे कोई भी ऋतु हो- ग्रीष्म, वर्षा, शीत, शिशिर, हेमंत या वसंत- हमारे कवियों की लेखनी सदा प्रवाहमान रही है, न केवल किसी एक युग में, अपितु सभी कालों में उन्होंने इस मौसमों की सजीव छवियाँ प्रस्तुत की हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में जब हम दृष्टिपात करते हैं, तो आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के कवि- भारतीय ऋतुओं के वर्णन में अपनी संपूर्ण सर्जनात्मक शक्ति लगाते हुए दिखाई देते हैं। उनका चित्रण ऐसा जीवंत होता है कि मानो हमारे सामने प्रकृति के मनोहर दृश्य नाच उठते हैं। उन्होंने जो काव्य रचना की, वह हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर बन गई है, जिसमें रस, छंद, अलंकार और शब्द-शक्ति की समृद्धता के साथ-साथ जीवन के सुख-दुख, अंतर्मन की पीड़ा, प्रेम, विरह, नीति और रीति का भी सूक्ष्मतम चित्रण समाहित है। इन कवियों की लेखनी ने न केवल मौसमों को सजाया, बल्कि उनके वर्णन से प्रकृति का अद्‌भुत और अलौकिक सौंदर्य भी हमारे मन-मस्तिष्क में अंकित हो गया। इसी कारण वे ऋतु कभी नियति की नटी, कभी प्रकृति की सुंदरी, कभी वर्षा की रानी, तो कभी बरखा बहार के रूपक बनकर कविता में अभिव्यक्त हुए। उनके अलंकारों ने इन मौसमों को सोलह शृंगारों से परिपूर्ण कर दिया, जिससे हमारा मन स्वतः ही उस ओर आकर्षित होने लगा।

षड् ऋतुओं में ऐसा कोई भी मौसम नहीं बचा जिस पर कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति न दी हो। विशेषकर वर्षा ऋतु का वर्णन अत्यंत हृदयस्पर्शी और रमणीय है। सावन मास की बात हो तो सावन के झूले के बिना तन-मन

अधूरा-सा लगता है, और वर्षा के आते ही मन आनंद और रोमांच से भर उठता है। वर्षा की ठंडी-ठंडी फुहारें, बूंदों की बौछारें, मौसम की वह कोमल खुमार, चारों ओर छाई हरियाली, नदियों-झरनों की मधुर धाराएं- सब मिलकर मन को मयूर की भांति प्रफुल्लित कर देती हैं। ऐसे में हमारे पैर बरसात की बूंदों में भीगने को बेचैन हो उठते हैं। यही भाव कवि सेनापति जी ने निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है-

'दामिनी दमक, सुरचाप की चमक,
श्याम घटा की घमक अति घनघोर तै।
कोकिला, कलापी कल कूजत हैं जित-तित,
सीतल है हीतल, समीर झकझोर तै।।'

इस प्रकार वर्षा ऋतु न केवल प्रकृति को नवीन जीवन प्रदान करती है, अपितु कवियों की कल्पनाशक्ति और भावनाओं को भी नवीनता से पोषित करती है। मलिक मोहम्मद जायसी ने वर्षा ऋतु का अत्यंत सुंदर और मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्होंने वर्षा के आगमन से धरती और आकाश की अनुपम शोभा का चित्रण किया है। उनकी रचना में धरती पर हरी-भरी हरियाली व्याप्त हो जाती है। वे आगे कहते हैं कि एक विरही रात्रि में, प्रीतम की स्मृति से जागती प्रियतम, उसी क्षण बादल गरज उठते हैं और वह भयभीत होकर चौंक जाती है-

'रितु पावस बरसै, पिउ पावा। सावन भादौं अधिक सोहावा।।
पदमावति चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन, भूमि सोहाई।।
रंग-राती पीतम संग जागी। गरजे गगन चौंकि गर लागी।।'

ऋग्वेद में भी वर्षा ऋतु को एक उल्लासमय उत्सव के रूप में उल्लिखित किया गया है, जहाँ हरी-भरी हरियाली के साथ प्रकृति अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है-

'ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वर्दन्तः।
संवत्सरस्य तदहः परि छु यन्मण्डूकाः प्रावृषीण बभूव।।'

इसके अतिरिक्त, तुलसीदास जी ने अपने 'रामचरितमानस' के किष्किंधा कांड में वर्षा ऋतु का अत्यंत प्रभावशाली वर्णन किया है। उन्होंने वर्षा के सान्निध्य में श्री राम द्वारा अपने भ्राता लक्ष्मण से रीति-नीति और धर्म की उपदेशात्मक वार्ता को प्रस्तुत किया है-

'कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरत नृपनीति बिबेका।।
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए।।'

रूपक और अलंकारों के समृद्ध प्रयोग से वर्षा ऋतु का चित्रण इतना जीवंत हुआ है कि जब धरती हरी-भरी हरियाली से सुसज्जित हो जाती है, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे साधकगण अपनी साधना में ज्ञान-प्राप्ति के आनंद से ओतप्रोत हों-

'दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।।
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका।।'

इस प्रकार हिंदी साहित्य के महान विभूतियों ने वर्षा ऋतु को न केवल प्रकृति के सौंदर्य का प्रतीक माना है, बल्कि उसे जीवन और आध्यात्मिकता के उल्लासमय रूप में भी अभिव्यक्त किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रत्येक काल में, चाहे वह आदिकाल हो, भक्तिकाल, रीतिकाल अथवा आधुनिक काल हो, कवियों ने वर्षा ऋतु के वर्णन में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने इसे एक पर्व, एक उत्सव, एक उमंग भरे उल्लास के रूप में अपनी लेखनी से अभिव्यक्त किया। आधुनिक काल के कवि भी इस परंपरा से विमुख नहीं हुए, बल्कि वर्षा के सौंदर्य का भव्य और विस्तृत चित्रण किया है। पंत जी ने अपनी कविता में कहा है कि वर्षा के आगमन से प्रकृति का स्वरूप पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है, जहाँ प्रकृति हर क्षण नये रूप में खिल उठती है। इस दृश्य को देखकर तन-मन आनंद और उल्लास से अभिभूत हो उठता है-

'पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश, पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
गिरि का गौरव गाकर झर-झर, मद में नस-नस उत्तेजित कर।'

इसी प्रकार नागार्जुन ने वर्षा ऋतु का वर्णन पर्वत शिखरों पर बादलों के घिरने के रूप में किया है, जो अत्यंत सूक्ष्म और सौंदर्यपूर्ण है-

'अमल धवल गिरि के शिखरों पर, बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे, उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है।'

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्षा ऋतु का वर्णन कितना भी किया जाए, वह अपूर्ण ही रहता है। फिर भी, यह निर्विवाद सत्य है कि वर्षा ऋतु जीवन का एक उत्सव, एक उमंग, और खुशियों की बौछार है, जो बिना भीगे भी तन-मन को रोमांच से भर देती है। हमारे कवियों ने इस ऋतु को केवल प्राकृतिक दृश्य के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे उत्सव की भांति स्वीकार कर अपनी काव्य रचनाओं का विषय बनाया, जिससे हिंदी साहित्य समृद्ध और सुवर्णिम हुआ।

– तुस्मा, शिवरीनारायण, छत्तीसगढ़

लेख

विज्ञान कथा साहित्य में पर्यावरण चेतना

• मोरे औदुंबर बबनराव

यह लेख पर्यावरण के महत्व और मानव द्वारा इसके विनाश पर केंद्रित है। इसमें बताया गया है कि विकास और विज्ञान की प्रगति ने पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया है, जिससे जल, वायु और भूमि प्रदूषित हो रही हैं। साहित्य इस संकट को उजागर करता है और सतत विकास की आवश्यकता पर जोर देता है ताकि मानव जीवन सुरक्षित रह सके।

पर्यावरण प्रत्येक जीव-जंतु और मानव के जीवन से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। यह हमारे चारों ओर व्याप्त है और हमारे अस्तित्व का आधार है। पर्यावरण ही वह स्रोत है जिससे हमें सांस लेने के लिए शुद्ध हवा, पीने के लिए जल और रहने के लिए भूमि मिलती है। प्रकृति ने हमें यह सब कुछ सृष्टि के रूप में दिया है, परंतु मानव स्वार्थ की भावना ने इसे विकृत कर दिया है। उसने प्राकृतिक पर्यावरण में बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप किया और अपनी आवश्यकताओं तथा विकास के लिए मानवीय पर्यावरण का निर्माण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जल, वायु और मृदा की स्वच्छता में भारी गिरावट आई है और आज वैश्विक तापमान में वृद्धि से संपूर्ण मानव जाति गंभीर संकट में है।

भूमंडलीकरण और उदारीकरण के युग में पर्यावरणीय असंतुलन ने विकराल रूप ले लिया है। इस संदर्भ में प्रख्यात पर्यावरणविद वी.एन. जन्मेजय का कथन है कि आधुनिक भौतिकवादी संस्कृति, औद्योगिक विकास, नगरीकरण और यांत्रिकी प्रगति के कारण विशाल फैक्ट्रियों, मिलों और कारखानों की स्थापना हुई। साथ ही विज्ञान के कृषि क्षेत्र में प्रवेश ने वैज्ञानिक खेती को प्रोत्साहित किया। इन सभी विकासात्मक कार्यों ने प्रकृति को भारी नुकसान पहुंचाया है। मनुष्य की बढ़ती भोगवादी प्रवृत्ति ने विश्व को गंभीर पर्यावरणीय संकट के कगार पर ला खड़ा किया है।

विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने मानव जीवन को अभूतपूर्व सुख-सुविधाएं प्रदान की हैं, किन्तु इस प्रगति के साथ-साथ पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को मानव ने नजरअंदाज किया है। सड़क निर्माण के लिए हजारों पेड़ काटे जा रहे हैं। एयर कंडीशनर, फ्रिज, वाहनों से निकलने वाली गैसें वायुमंडल को प्रदूषित कर रही हैं तथा ओजोन परत को नुकसान पहुंचा रही हैं। इस सन्दर्भ में विज्ञान कथाकार देवेंद्र मेवाड़ी ने कहा है, 'प्रगति की भी एक सीमा होती है। प्रगति के साथ-साथ विवेक भी उतना ही आवश्यक है।'

विज्ञान और तकनीकी विकास ने न केवल मानव जीवन के स्वरूप को बदला है, बल्कि उसके सामाजिक संबंधों और व्यवहारों में भी बदलाव लाए हैं। विज्ञानकथा साहित्य इसी परिवर्तन का दर्पण है, जो वैज्ञानिक खोजों, तकनीकी प्रगति, और सामाजिक परिवर्तनों के संभावित प्रभावों को उजागर करता है। यह साहित्य भविष्य की कल्पना करता है, भविष्य की तस्वीर उकेरता है और संभावित खतरों व अवसरों का वर्णन करता है- कैसे होगी कल की दुनिया? मानव का भविष्य क्या होगा? क्या वह सुदूर अंतरिक्ष में अपने वास स्थान स्थापित करेगा? या जनसंख्या विस्फोट के कारण अकाल और भुखमरी से जूझता रहेगा? क्या मशीनें और रोबोट मानवता पर हावी हो जाएंगी? या अपनी ही आविष्कारों से अपना विनाश कर देगा? ये सभी प्रश्न विज्ञानकथा के माध्यम से मानवता के समक्ष रखे जाते हैं।

विकसित और विकासशील देश भूमंडलीकरण के चक्रव्यूह में फंसे हुए हैं और अपने प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन कर रहे हैं, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र पर गंभीर संकट मंडरा रहा है। स्वच्छ हवा और शुद्ध जल मानव के बुनियादी अधिकार हैं, परंतु आज आम जनता को भी ये सुविधाएं प्राप्त करना कठिन हो गया है। जल संकट इतना गंभीर हो चुका है कि लगभग 40% जनसंख्या को पर्याप्त और स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं है। इसका प्रमुख कारण जंगलों की अंधाधुंध कटाई है, जिससे पेड़-पौधों की संख्या कम होती जा रही है। देवेंद्र मेवाड़ी की विज्ञान कथा 'दिल्ली मेरी दिल्ली' इस जल संकट की भयावह स्थिति को उकेरती है, जहां 'अब न हैंडपंप है और न मोटरपंप क्योंकि जमीन के भीतर पानी इतना नीचे चला गया है कि उसे निकालना असंभव हो गया है।' न तो कहीं सुर्ख पलाश के पेड़ हैं, न गुलमोहर के फूल, न नीम-पिपल की छांव। यह हमारे प्रकृति के साथ खिलवाड़ का सीधा परिणाम है।

आज का मानव विकास के मोह में इस कदर खो चुका है कि वह आने वाली पीढ़ियों के भविष्य की चिंता करना भूल गया है। जिस तेजी से हम

जंगलों की कटाई कर रहे हैं, उसी गति से पर्यावरण और मानव जीवन का भविष्य भी खतरे में पड़ रहा है। लगातार घटते जंगलों के कारण वैश्विक जलवायु परिवर्तन की समस्या गहरी होती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ा है, भूमि उपयोग में बदलाव आया है, वर्षा के पैटर्न में अनियमितता आई है, समुद्र के जल स्तर में वृद्धि हुई है, वन्य जीवों की प्रजातियां संकट में हैं, अनेक रोगों का प्रसार बढ़ा है और आर्थिक नुकसान हो रहा है। जंगलों में भीषण आग लगने की घटनाएं आम होती जा रही हैं।

विज्ञान कथा 'अतीत में एक दिन' में यह कठोर सत्य उभर कर सामने आता है कि पिछले पांच सौ वर्षों में मानव ने कितने पेड़-पौधे काटे हैं, जिससे न केवल पेड़ नष्ट हुए बल्कि उनके साथ आने वाली कई पीढ़ियां भी समाप्त हो गईं। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि एक पेड़ केवल पेड़ नहीं होता, वह भविष्य का एक पूरा जंगल होता है। आज हम इस भविष्य को निरंतर समाप्त कर रहे हैं। मानव जीवन प्रकृति के अस्तित्व पर निर्भर है। प्रकृति का संरक्षण मानवीय प्रयासों पर टिका है। वैज्ञानिक अनुसंधान इस बात को स्पष्ट करते हैं कि जब तक मानव गतिविधियां प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखेंगी, तब तक मानव जीवन सुरक्षित रहेगा। वर्तमान में पर्यावरणीय मुद्दों को विज्ञानकथा साहित्य के माध्यम से व्यापक रूप से समाज के सामने रखा जा रहा है। साथ ही, हमें विकास के ऐसे महडल खोजने होंगे जो पर्यावरण के साथ संतुलित हों और जिनसे मानव जाति का अस्तित्व सुरक्षित रह सके। तभी हम एक स्थायी और सुरक्षित भविष्य की आशा कर सकते हैं।

संदर्भः

शर्मा, सुभाष. *पर्यावरण और विकास.* सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2017
मेवाड़ी, देवेंद्र. *भविष्य.* नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, 1996
मेवाड़ी, देवेंद्र. *कोख.* नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, 1998

– शोधार्थी, हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव, बीड (महाराष्ट्र)

लेख

बिहार में ग़ज़ल लेखन

• ज़ियाउर रहमान जाफ़री

यह लेख बिहार की समकालीन ग़ज़ल-लेखन की परंपरा और नवाचार को समेटते हुए अनुभवी शायरों और उभरते रचनाकारों की रचनात्मक यात्रा को सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है। शिल्प, संवेदना और सामाजिक सरोकारों से जुड़ी यह प्रस्तुति हिंदी ग़ज़ल को नए तेवर और दिशा देती है।

हिंदी ग़ज़ल की लोकप्रियता दिनोदिन जिस प्रकार विस्तार पा रही है, उसमें बिहार के अनेक शायरों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन कवियों ने न केवल सृजनात्मक स्तर पर ग़ज़ल को समृद्ध किया, अपितु आलोचनात्मक दृष्टिकोण से भी इस विधा की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने इस परंपरा को निष्ठा और निरंतरता के साथ आगे बढ़ाया है। जब भी बिहार के गजलकारों की चर्चा होती है, तो सर्वप्रथम नाम अनिरुद्ध सिन्हा का आता है। वे न केवल एक सशक्त शायर हैं, बल्कि हिंदी ग़ज़ल के एक गंभीर आलोचक के रूप में भी राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बना चुके हैं। उन्होंने 'तिनके भी डराते हैं', 'तपिश तड़प', 'तमाशा', 'हिंदी ग़ज़लः सौंदर्य और यथार्थ' जैसी महत्वपूर्ण कृतियों के माध्यम से हिंदी गजल की विकास-यात्रा को नई दिशा प्रदान की है। हाल ही में, डॉ. भावना के संपादन में उनके ग़ज़ल-साहित्य पर केंद्रित एक समग्र आलोचनात्मक ग्रंथ भी प्रकाशित हुआ है, जो उनके रचनात्मक अवदान का सार्थक मूल्यांकन करता है। अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़लों की सबसे विशिष्ट विशेषता है- उनकी सहजता और सरलता। उनके शे'रों में प्रतिरोध की स्वर-ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई देती है, किंतु यह विरोध तल्खी से नहीं, एक नर्म लहजे की शालीन मुखालफत के रूप में अभिव्यक्त होता है। भाषा के प्रति उनकी सूक्ष्म सजगता उनकी पहचान बन चुकी है। वे अपने दो मिसरों में संपूर्ण जीवन-दर्शन समेट लेने की क्षमता रखते हैं। उनके कुछ शे'र दृष्टव्य हैं-

'अगर दरख़्त न होंगे तो यह समझ लीजै,
सफर की धूप में साया कोई नहीं देगा।'

 सितंबर, 2025 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'जब से आई है चिड़िया चहकते हुए,
मेरे आंगन की सरगम बदलने लगी।'

इसी कड़ी में, डॉ. भावना का नाम भी बिहार की हिंदी ग़ज़ल-परंपरा में विशेष उल्लेखनीय है। वे हिंदी ग़ज़ल की एक सशक्त और सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। उन्होंने केवल शायरी ही नहीं की, बल्कि आलोचना के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनकी आलोचना-पुस्तक 'हिंदी ग़ज़ल के बढ़ते आयाम' तथा चर्चित गजल-संग्रह 'मेरी माँ में बसी है' और 'धुंध में धूप' ने पाठकों और समीक्षकों का समान रूप से ध्यान आकृष्ट किया है। उनकी ग़ज़लें अब विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों का भी हिस्सा बन चुकी हैं। डॉ. भावना की ग़ज़लों में सामाजिक विडंबनाओं, धार्मिक विद्वेष, जातिगत भेदभाव, स्त्री-विमर्श और प्रेम जैसे विषयों की मार्मिक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में मिथकों का भी सशक्त प्रयोग किया है, जिससे उनकी शायरी में सांस्कृतिक गहराई और संवेदनात्मक आयाम जुड़ता है। उनके कुछ शेर दृष्टव्य हैं-

'महामारी को भी अवसर बना दे
भला वो किस तरह का देवता है।'

'दर्द देते हो, दवा देते हो
प्यार करने की सजा देते हो।'

बिहार की महिला शायरों में डॉ. आरती का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। वे न केवल ग़ज़ल लेखन में सक्रिय हैं, बल्कि मंचीय प्रस्तुतियों के माध्यम से भी गजल को जनसाधारण तक पहुंचाने का कार्य कर रही हैं। उनकी हालिया प्रकाशित कृति 'साथ रखना है' ने हिंदी ग़ज़ल-समीक्षकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। उनके कुछ शे'र ग़ज़ल की कोमलता और भाव-संवेदनाओं की सुंदर प्रस्तुति करते हैं-

'उसकी आँखों में चाँद रौशन है
तीरगी अब बिखर गई होगी।'

'आसमां को भी धरा मिल जाएगी
बस जरा-सा सिर झुकाना चाहिए।'

इस तरह यह कहा जा सकता है कि बिहार के शायरों ने हिंदी ग़ज़ल को एक नई जीवंतता, सौंदर्य और विचारधारा प्रदान की है। उन्होंने न केवल शिल्पगत परिपक्वता दिखाई है, बल्कि समकालीन सामाजिक संदर्भों को भी ग़ज़ल

की पारंपरिक बहरों में पिरोकर एक नवीन संवेदना का संचार किया है। हिंदी गजल का भविष्य इन कलमकारों की साधना और सृजनशीलता से निश्चित ही और अधिक उज्ज्वल होने की ओर अग्रसर है।

जब बिहार के ग़ज़ल साहित्य की समृद्ध परंपरा की चर्चा होती है, तो हमारी दृष्टि उन शायरों की ओर भी जाती है, जिन्होंने अपने समय में उत्कृष्ट और अर्थगर्भित ग़ज़लों की रचना की। इनमें कुछ अब हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनकी रचनाएं आज भी ग़ज़ल-जगत को आलोकित कर रही हैं, वहीं कुछ रचनाकार आज भी निरंतर साधना में लीन हैं। ऐसे उल्लेखनीय शायरों में शिव नारायण, फजलुर रहमान हाशमी, सियाराम प्रहरी, शिवनंदन सिंह, अशांत भोला, चाँद मुंगेरी, नचिकेता, प्रेमकिरण, छंदराज, अशोक आलोक आदि के नाम विशेष उल्लेख के योग्य हैं। बिहार के नवोदित किंतु साहित्यिक पहचान बना चुके शायरों में विकास, अभिषेक कुमार सिंह, राहुल शिवाय, अविनाश भारती, श्वेता गजल, रामा मौसम, शेखर सावंत आदि ऐसे नाम हैं जिनसे न केवल वर्तमान ग़ज़ल-लेखन को नई ऊँचाइयां मिली हैं, बल्कि भविष्य की अपेक्षाएं भी जुड़ी हुई हैं।

बेगूसराय के शायर अशांत भोला की ग़ज़लों में ठोस यथार्थ का गहरा स्पर्श मिलता है। समाज में जो उपेक्षित है, जो अनसुना है, वही उनके शे'रों का कथ्य बनता है। उनके अश'आर सामाजिक अन्याय और मानवीय पीड़ा की गहन अभिव्यक्ति हैं-

'हार कर इंसाफ-घर से लौट आए
यातनाओं के सफर से लौट आए।'

'चुपके से आजमाना अच्छा नहीं लगा
ये आप का निशाना अच्छा नहीं लगा।'

भागलपुर की शायरा आभा ने 'नया हस्ताक्षर' पत्रिका का संपादन कर साहित्यिक पत्रकारिता में योगदान दिया है। उन्होंने दोहा-ग़ज़ल के नवाचार द्वारा गजल की पारंपरिक रचना-पद्धति में एक नवीन प्रवृत्ति जोड़ी है। उनका एक शे'र विशेष रूप से चर्चित रहा है-

'सांसों पर पहरा हुआ, घुटते जाते प्राण
सन्नाटे में चीख कर मिला उन्हें वरदान।'

हिंदी ग़ज़ल के वरिष्ठ आलोचक अनिरुद्ध सिन्हा का मानना है कि आज की ग़ज़लें जीवन के जटिल और अनछुए पहलुओं को छूती हैं। बिहार में

लिखी जा रही ग़ज़लों को इस दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जा सकता है। कुछ शे'र दृष्टव्य हैं-

'एक सीधे आदमी को क्यों तबाही दे गई
हाथ में गीता लिए झूठी गवाही दे गई।'

-उपेंद्र प्रसाद सिंह

'आज के दौर की नई ग़ज़लें
तिलमिलाती ये किरचई ग़ज़लें।'

-चाँद मुंगेरी

'कहीं जुल्म की बादशाही न देना
सितमगर की वह वाहवाही न देना।'

-दिनेश तपन

'जब जान आ के जिस्म से बाहर निकल गई
बेटे ने मकबरा तब बनवाया शान से।'

-वसंत

'जलजलों के बाद भी उम्मीद है
इस यकीं को एक पौधा रह गया।'

-शांति यादव

'उस कलम की कभी न कल आए
जिस कलम पर नहीं गजल आए।'

-सियाराम प्रहरी

बिहार के ग़ज़ल साहित्य में मानव अस्तित्व की गहन पड़ताल की गई है। हिंदी ग़ज़ल का स्वभाव प्रारंभ से ही विद्रोही, प्रश्नाकुल और विमर्शशील रहा है। यह उर्दू ग़ज़ल की भांति केवल इश्क़ की बुनियाद पर नहीं टिकी, बल्कि इसने ऊब, चिंता, सामाजिक यथार्थ और वैचारिक बेचैनी को केंद्र में रखा। यदि शिल्प की बात करें तो हिंदी ग़ज़ल ने उर्दू की बहरों को अपनाया जरूर, परंतु उसकी अंतर्वस्तु और बनावट पूर्णतः अपनी रही। बिहार के युवा ग़ज़लकारों में विकास और राहुल शिवाय का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। विकास के दो ग़ज़ल संग्रह और एक संपादित पुस्तक को आलोचकों ने गंभीरता से संज्ञान में लिया है। उनकी ग़ज़लों में प्रेम, सौंदर्य और उत्साह की त्रयी धाराओं का संतुलित प्रवाह दिखाई देता है। एक शे'र दृष्टव्य है-

'बगल की सीट पर बैठो तुम्हीं अब
तुम्हारे नाम का चर्चा नहीं है।'

बिहार की ग़ज़ल परंपरा विविधतापूर्ण और विचारपूर्ण रही है। यहाँ शायरों ने ग़ज़ल को केवल भावनात्मक माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्श का औजार बनाया है। पुराने और नए शायरों के बीच जो सेतु बना है, वह न केवल परंपरा का संवाहक है, बल्कि नवाचार का प्रेरक भी। हिंदी गजल के इस अविराम यात्रा में बिहार की भूमिका निःसंदेह अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणास्पद है। बिहार की साहित्यिक भूमि ने सदैव रचनात्मकता को सहृदय पोषण दिया है। हिंदी गजल के क्षेत्र में यह परंपरा आज और भी सशक्त स्वरूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। समकालीन दौर में अनेक युवा और वरिष्ठ गजलकारों ने इस विधा को न केवल साधा है, बल्कि उसे नई दृष्टि, नई संवेदना और नवाचार के साथ विस्तार भी दिया है। 'मौन भी अपराध है' जैसे प्रभावशाली काव्य-संग्रह के रचयिता राहुल शिवाय लेखन और प्रकाशन- दोनों क्षेत्रों में अत्यंत सक्रिय हैं। उनके शे'रों में जीवन-संघर्ष, उम्मीद और आत्मबल की झलक मिलती है। यह शेर उनकी संवेदनशील दृष्टि और रचनात्मक गहराई को प्रमाणित करता है-

'अंधेरी रात है पर रोशनी सलामत है
गमों के बीच भी यह जिंदगी सलामत है।'

बिहार की उभरती हुई महिला ग़ज़लकारों में श्वेता ग़ज़ल ने तीव्र गति से अपना स्थान बनाया है। मंचीय प्रस्तुति हो या शिल्प की शुद्धता- उनकी गजलें एक परिपक्व शायरा की छवि को रेखांकित करती हैं। प्रेम की विडंबनाओं को उन्होंने बड़ी सहजता से अभिव्यक्त किया है-

'तोड़कर दिल गया एक पल में मेरा
प्यार का ये कोई कायदा तो नहीं।'

युवा ग़ज़लकार अविनाश भारती न केवल ग़ज़ल लेखन में रत हैं, बल्कि बिहार के ग़ज़लकारों पर शोध-कार्य भी कर रहे हैं। उनके शे'रों में सामाजिक विषमता और जमीनी सच्चाई की तीखी गूंज सुनाई देती है-

'मयस्सर नहीं जब हमें दाल-रोटी
मुनासिब है कितना कमाना हमारा।'

बिहार के अन्य प्रतिभावान युवा ग़ज़लकारों में अंजनी कुमार सुमन, कुमार आर्यन, अमन ग्यावी, नवनीत कृष्ण, ए.आर.आजाद जैसे नाम निरंतर गजल-सृजन में रत हैं और एक नई परंपरा का निर्माण कर रहे हैं। फजलुर रहमान हाशमी बिहार के वरिष्ठ और बहुचर्चित ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने हिंदी के साथ-साथ मैथिली साहित्य में भी विशिष्ट पहचान बनाई है। मैथिली में साहित्य

अकादमी पुरस्कार प्राप्त कर चुके हाशमी जी हिंदी ग़ज़ल परंपरा में पौराणिक बिंबों और प्रतीकों के प्रयोगकर्ता के रूप में विशेष उल्लेखनीय हैं। उनका गजल-संग्रह 'मेरी नींद तुम्हारे सपने' शिल्प और कथ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है-

'उनकी किस्मत में कब है वैदेही
जो धनुष को कभी उठा न सके।'

'मानो एहसान कर्म का अर्जुन
सांप फन बारहा उठाता है।'

अमान जख़ी रवी का ग़ज़ल संग्रह 'परिंदों का सफर' आम जनजीवन के यथार्थ को सहज भाषा में व्यक्त करता है। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ऐसे शब्दों का चयन किया है, जो हिंदी पाठकों को आसानी से ग्राह्य हो सके-

'वक्त ने ऐसे दिन दिखाए हैं
कितना बूढ़ा है हर जवां चेहरा।'

ग़ज़ल केवल तुकांत, काफ़िया या बहर का नाम नहीं, बल्कि यह जीवन के अनुभवों की धड़कन है। केवल तकनीकी दक्षता से ग़ज़ल नहीं बनती, उसमें प्रभाव की गहराई और आत्मिक संगीत होना चाहिए। वरिष्ठ आलोचक आर. पी. शर्मा 'महर्षि' ने ग़ज़ल के छंद और उसकी सामाजिक उपयोगिता पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनका मानना है- ''गजल वह है जो जीवनोपयोगी हो और अपनी धरती तथा परिवेश से गहरे जुड़ी हो। यह एक सुकोमल विधा है, जिसे नफ़ासत से छूना पड़ता है, क्योंकि यह हल्की-सी छुअन से भी मैली हो सकती है।'' अभिषेक कुमार सिंह ने गजल को पारंपरिक चौखटे से बाहर निकालकर उसमें नए विषय, नए प्रतीक और नए शब्द जोड़े हैं। उनके शेरों में न केवल वैचारिक ताजगी है, बल्कि गहरी संवेदना और सौंदर्यबोध भी-

'आओ उतार लाएं जमीं पर वो रौशनी
झिलमिल जो कर रही है सितारों के आसपास।'

'अजीब घोड़े हैं चाबुक की मार सहकर भी
सलाम करते हैं मालिक को हिनहिनाते हुए।'

डॉ. जियाउर रहमान जाफरी के दो गजल संग्रह 'खुले दरीचे की खुश्बू' और 'खुश्बू छूकर आई है' प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी आलोचना पुस्तक 'गजल

लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास' इस विधा पर गंभीर दृष्टिपात करती है। उनके शे'र भी चिंतन को उद्वेलित करते हैं-

'नई इक फैक्ट्री तामीर कर लेने की चाहत में
यहाँ के लोग होरी से किसानी छीन लेते हैं।'

'हमारी उम्र तो गुजरी उजाले लाते हुए
चराग सोच रहा था मकां जलाते हुए।'

शिवनारायण, 'नई धारा' के संपादक तथा लगभग 32 पुस्तकों के रचयिता, हिंदी ग़ज़ल के एक प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं। उन्हें बिहार सरकार द्वारा 'नागार्जुन सम्मान' से भी विभूषित किया गया है। उनके ग़ज़ल-संग्रह 'झील में चाँद' को समीक्षकों ने विशेष सराहना दी है। जैसा कि शहंशाह आलम ने लिखा है, इस संग्रह में समकालीन वैश्विक समस्याओं की भी अनुगूंज सुनाई देती है-

'उसी के हाथ होंगे फूल सारे
महक का कारवाँ जो आ रहा है।'

'बहुत हैरान है खामोशियों में
परिंदा फड़फड़ाना चाहता है।'

जैसा कि अहमद रजा ने लिखा है, गजल में 'नग्मग़ी, रवानी और मौसिकी' का होना अनिवार्य है। ग़ज़ल कोई कृत्रिम प्रयोग नहीं, बल्कि संवेदना, शैली और सौंदर्य का जीवंत रूप है। बिहार के ग़ज़लकार इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। बिहार के अन्य उल्लेखनीय युवा गजलकारों में आनंदवर्धन, मनीष कुमार सिंह, प्रीति सुमन, रामनाथ शोधार्थी, हरिनारायण सिंह, स्वराक्षी स्वरा, रंजना जायसवाल, दीप नारायण आदि ऐसे नाम हैं जो पूरी निष्ठा और लगन से गजल-साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। उपर्युक्त विवेच्न के आधार पर हम कह सकते हैं कि बिहार की ग़ज़ल-संवेदना अपने पूरे वैभव और विविधता के साथ हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान ग्रहण कर रही है। यहाँ की ग़ज़लें न केवल विषयवस्तु में व्यापक हैं, बल्कि उनमें कथ्य की शक्ति, भाव की गहराई और भाषा की आत्मीयता भी समाहित है। यदि यह परंपरा इसी गति से आगे बढ़ती रही, तो आने वाले समय में बिहार हिंदी ग़ज़ल के सशक्त केंद्र के रूप में और भी प्रखरता से उभरेगा।

– स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, मिर्जा गालिब कॉलेज गया, बिहार

शोधालेख

नई शिक्षा नीतिः कार्यान्वयन की चुनौतियां

• शैलेश शुक्ला

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारत की शिक्षा प्रणाली में नए बदलाव और सुधारों की दिशा निर्धारित की है। लेकिन शिक्षकों की तैयारी, बुनियादी सुविधाओं की कमी, डिजिटल असमानता और वित्तीय चुनौतियाँ इसे लागू करने में बाधा बन रही हैं। लेख इन समस्याओं का विश्लेषण कर समाधान सुझाता है। यदि नीति को समन्वित प्रयासों से लागू किया गया, तो यह शिक्षा और सामाजिक विकास दोनों में क्रांतिकारी बदलाव ला सकती है।

शोध-सार
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत के शैक्षिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण और दूरदर्शी पहल है, जो शिक्षा को केवल औपचारिक ज्ञान के अधिग्रहण तक सीमित न रखकर उसे सर्वांगीण विकास, कौशल निर्माण और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए उपयुक्त बनाने पर केंद्रित करती है। 34 वर्षों के लंबे अंतराल के बाद आई इस नीति ने 5+3+3+4 की नई शिक्षा संरचना, मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा, बहुभाषिकता, डिजिटल शिक्षा, कौशल आधारित पाठ्यक्रम और उच्च शिक्षा में लचीलापन जैसी अनेक नवीन अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं। यह नीति भारत को ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित करने की क्षमता रखती है। हालांकि, इसके क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ उभरकर सामने आई हैं। शिक्षकों की अपर्याप्त तैयारी, बुनियादी संरचना की कमी, डिजिटल डिवाइड, भाषा से जुड़ी जटिलताएँ, मूल्यांकन प्रणाली में बदलाव की धीमी गति, उच्च शिक्षा संस्थानों की कठोरता, वित्तीय संसाधनों की कमी और सामाजिक-सांस्कृतिक विषमताएँ इस नीति के प्रभावी कार्यान्वयन में गंभीर अवरोधक बन रही हैं। राज्यों के बीच नीतिगत प्राथमिकताओं और क्षमता में भिन्नता भी नीति के सफल कार्यान्वयन को प्रभावित करती है। यह शोध पत्र इन सभी बाधाओं का व्यापक विश्लेषण करते हुए व्यवहारिक समाधान सुझाता है, जिनमें शिक्षक प्रशिक्षण का पुनर्गठन, डिजिटल समावेशन मिशन, द्विभाषिक शिक्षण नीति, सार्वजनिक-निजी साझेदारी

के माध्यम से संसाधन सुदृढ़ीकरण और वित्तीय प्रतिबद्धता में वृद्धि जैसे उपाय शामिल हैं। यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को एक सामूहिक राष्ट्रीय संकल्प और व्यवस्थित प्रयासों के साथ लागू किया जाए, तो यह शिक्षा को न केवल समावेशी और गुणवत्ता युक्त बनाएगी, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी सिद्ध होगी।

प्रस्तावना

2020 में जब भारत सरकार ने बहुप्रतीक्षित राष्ट्रीय शिक्षा नीति को प्रस्तुत किया, तो पूरे देश में एक नई शैक्षिक क्रांति की आशा जगी। लगभग 34 वर्षों बाद देश को एक नई नीति मिली, जिसने शिक्षा को न केवल औपचारिक ज्ञान का माध्यम माना, बल्कि इसे भारतीय संस्कृति, वैश्विक प्रतिस्पर्धा और भावी पीढ़ियों के सर्वांगीण विकास का उपकरण बनाने की दिशा में क्रांतिकारी रूप से पुनर्परिभाषित किया। इस नीति ने शिक्षा को ज्ञान, कौशल, नैतिकता और नवाचार से जोड़ते हुए 5+3+3+4 की संरचना, मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा, कौशल विकास और उच्च शिक्षा में लचीलापन जैसे दूरदर्शी प्रस्ताव दिए। लेकिन जब नीति को धरातल पर उतारने की बारी आई, तो स्पष्ट हो गया कि केवल एक शानदार दस्तावेज बना लेने से कुछ नहीं होगा। भारत जैसा विशाल और विविधतापूर्ण देश जहाँ भाषा, संसाधन, भौगोलिक विषमता और प्रशासनिक क्षमता में असमानता है-वहाँ इस नीति को यथावत लागू कर पाना स्वयं एक चुनौती बन गया। शिक्षा का यह अमृतकाल तभी सार्थक होगा जब हम इन बाधाओं को पहचानकर, उनका व्यवस्थित समाधान तलाशें और केंद्र से लेकर ग्राम पंचायत तक शिक्षा की एक समान, समावेशी और नवाचारी तस्वीर गढ़ें।

शिक्षकों की तैयारी

शिक्षकों को किसी भी शिक्षा प्रणाली की रीढ़ कहा जाता है और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी इस बात को स्वीकार करती है। लेकिन जब शिक्षकों की वर्तमान स्थिति देखी जाती है, तो नीति का लक्ष्य और जमीनी हकीकत के बीच गहरी खाई नजर आती है। देश के अधिकांश शिक्षक न तो नीति की मूल भावना को भलीभांति समझ पा रहे हैं और न ही उन्हें नई शैक्षणिक पद्धतियों जैस गतिविधि-आधारित शिक्षण, रचनात्मक मूल्यांकन या योग्यता-आधारित पाठ्यक्रम में उचित प्रशिक्षण मिला है। ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में तो स्थिति और भी चिंताजनक है, जहाँ शिक्षक बहुधा एकाधिक कक्षाओं को एक साथ पढ़ा रहे हैं

और संसाधनों की कमी से जूझ रहे हैं। समाधान के लिए आवश्यक है कि शिक्षकों का पूर्व सेवा और सेवाकालीन प्रशिक्षण पूरी तरह से राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप पुनर्गठित हो। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को पुनः सशक्त किया जाए और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स जैसे 'दीक्षा' या 'स्वयं' को और व्यापक बनाया जाए। स्थानीय भाषा में उच्च गुणवत्ता वाला सामग्री, प्रोत्साहन आधारित मूल्यांकन और नवाचार को बढ़ावा देने वाली संस्कृति शिक्षकों में नीति की आत्मा को जीवित कर सकती है।

बुनियादी संरचना

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मकता (एफएलएन) पर विशेष जोर दिया गया है। लेकिन क्या देश का प्राथमिक शिक्षा तंत्र इसकी तैयारी में सक्षम है? उत्तर स्पष्ट है- नहीं। सरकारी स्कूलों की वास्तविकता देखें तो आज भी हजारों स्कूल ऐसे हैं जहाँ पर्याप्त कक्षाएं नहीं हैं, पुस्तकालय और प्रयोगशालाएं तो दूर, शौचालय और पीने के पानी की भी व्यवस्था दयनीय है। डिजिटल शिक्षा को प्रोत्साहित करने की बात कही गई है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी, बिजली की उपलब्धता और डिजिटल उपकरणों की भारी कमी है। समाधान का मार्ग सिर्फ बजट बढ़ाने में नहीं, बल्कि स्मार्ट तरीके से संसाधनों का पुनर्विनियोजन करने में है। सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी), सीएसआर के माध्यम से स्कूलों में इंफ्रास्ट्रक्चर सुधार, पंचायतों और स्थानीय निकायों की भागीदारी से छोटे-छोटे नवाचार किए जा सकते हैं। साथ ही, राज्यों को अनुदान देते समय बुनियादी संरचना को प्रमुख मापदंड बनाया जाए।

भाषा की जटिलताः मातृभाषा बनाम व्यावसायिक यथार्थ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कहा गया है कि कक्षा 5 (या जहां संभव हो, कक्षा 8) तक मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाई होनी चाहिए। इस प्रस्ताव का उद्देश्य बच्चों की सहज समझ, भावनात्मक जुड़ाव और बेहतर बौद्धिक विकास को प्रोत्साहित करना है। लेकिन जब व्यवहार की बात आती है, तो शहरी भारत में अंग्रेजी की व्यावसायिक आवश्यकता और सामाजिक प्रतिष्ठा इतनी गहरी है कि अभिभावक स्वयं मातृभाषा में शिक्षा को एक अवनति मानते हैं। दूसरी ओर, ग्रामीण क्षेत्रों में यदि शिक्षक ही मातृभाषा में दक्ष न हों या पाठ्यसामग्री ही अनुपलब्ध हो, तो यह पहल असफलता की ओर जाती है। समाधान है एक लचीली द्विभाषिक नीति- जहाँ क्षेत्रीय भाषा में शिक्षण को प्राथमिकता दी जाए,

वहीं छात्रों को कक्षा 6 से आगे अंग्रेजी भाषा में दक्ष बनाया जाए ताकि वे वैश्विक प्रतियोगिता में पिछड़ें नहीं। साथ ही, सभी स्थानीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण सामग्री का तेजी से विकास और शिक्षक प्रशिक्षण होना अनिवार्य है।

मूल्यांकन प्रणाली

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने कहा कि अब शिक्षा केवल परीक्षा-केन्द्रित नहीं होगी बल्कि सीखने की प्रक्रिया, रचनात्मकता, विश्लेषण और नैतिक विकास को भी मापा जाएगा। इसके लिए मूल्यांकन, मूल्यांकन, प्रोजेक्ट-आधारित शिक्षण और विभागों जैसे आधुनिक उपाय सुझाए गए। परंतु शिक्षकों को इन नई पद्धतियों का अनुभव नहीं है। स्कूलों में अभी भी साल के अंत में केवल एक लिखित परीक्षा के आधार पर विद्यार्थी का मूल्यांकन हो रहा है। यह केवल छात्रों के लिए ही नहीं, शिक्षकों के लिए भी अतिरिक्त मानसिक बोझ बन गया है। समाधान के रूप में देशभर में मूल्यांकन के चपसवज उवकनसमे चलाने होंगे ताकि शिक्षक-छात्र नई प्रणाली से धीरे-धीरे परिचित हो सकें। इसके अलावा, डिजिटल टूल्स के माध्यम से मूल्यांकन को सरल, रोचक और प्रभावी बनाया जा सकता है, जैसे एआई-आधारित मूल्यांकन ऐप्स, गेमीफाइड आकलन आदि।

उच्च शिक्षा में लचीलापन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम, अकादमिक क्रेडिट बैंक और अंतःविषयक शिक्षण की परिकल्पना की गई है, जो वास्तव में शिक्षार्थियों को आजादी और लचीलापन देती है। लेकिन देश के अधिकांश विश्वविद्यालय अभी भी पुराने पाठ्यक्रम, कठोर प्रशासनिक ढांचे और रटंत प्रणाली से संचालित हो रहे हैं। विद्यार्थियों को क्रेडिट ट्रांसफर की सुविधा, ऑनलाइन और ऑफलाइन पाठ्यक्रमों का समायोजन और समन्वित मूल्यांकन व्यवस्था आज भी एक सपना मात्र है। समाधान के लिए यूजीसी और नीति आयोग जैसे निकायों को उच्च शिक्षण संस्थानों का क्षमता निर्माण करना होगा। डिजिटल विश्वविद्यालय, एक राष्ट्र एक डेटा प्लेटफहर्म, क्रेडिट रिपोजिटरी सिस्टम जैसे उपायों को गति देकर इस लचीलेपन को वास्तविक रूप देना होगा।

डिजिटल डिवाइड

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तकनीक को शिक्षा के सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत करती है। डिजिटल लर्निंग, ऑनलाइन पाठ्यक्रम, ई-लाइब्रेरी और एआई-एकीकृ त शिक्षण प्लेटफॉर्म जैसे अनेक नवाचार प्रस्तावित किए गए हैं। दीक्षा, स्वयं,

ई-पीजी पाठशाला और वर्चुअल लैब्स जैसी पहलकदमियों को एक राष्ट्रव्यापी डिजिटल शिक्षा आंदोलन का स्वरूप देने का प्रयास किया गया है। लेकिन इस सपने को साकार करने की राह में सबसे बड़ी बाधा है- डिजिटल डिवाइड। देश के ग्रामीण इलाकों में आज भी लाखों बच्चों के पास न स्मार्टफोन है, न इंटरनेट की सुविधा और न ही बिजली की सतत उपलब्धता। यहाँ तक कि शहरी क्षेत्रों में भी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के छात्र तकनीकी संसाधनों के अभाव में डिजिटल शिक्षा से कटे हुए हैं। महामारी के दौरान जब पूरी शिक्षा प्रणाली ऑनलाइन हुई, तब यह अंतर और भी स्पष्ट हो गया। हजारों बच्चों की पढ़ाई पूरी तरह ठप हो गई, क्योंकि वे डिजिटल माध्यमों तक पहुँच ही नहीं बना सके। इसने शिक्षा में अवसरों की असमानता को बढ़ा दिया, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समावेशी शिक्षा के लक्ष्य के विपरीत है। इस बाधा के समाधान के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को संयुक्त रूप से एक डिजिटल समावेशन मिशन प्रारंभ करना होगा। कम लागत वाले टैबलेट, सामुदायिक शिक्षण केंद्र, ऑफलाइन-सुलभ सामग्री और स्थानीय भाषा में डिजिटल संसाधनों का सृजन ही इस असमानता को पाटने का एकमात्र रास्ता है। सीएसआर के तहत निजी कंपनियों को ग्रामीण विद्यालयों को तकनीकी सहायता देने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। साथ ही, सभी विद्यालयों को न्यूनतम डिजिटल बुनियादी ढांचे उपलब्ध कराना अनिवार्य किया जाना चाहिए।

सामाजिक-सांस्कृतिक विषमता

भारत की सामाजिक बनावट अत्यंत जटिल है। जाति, वर्ग, लिंग, भाषा, धर्म और भौगोलिक स्थिति जैसे अनेक कारकों का गहरा प्रभाव हमारी शिक्षा प्रणाली पर पड़ता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य एक ऐसी समावेशी शिक्षा व्यवस्था बनाना है जहाँ सभी छात्र- चाहे वे किसी भी सामाजिक पृष्ठभूमि से आते हों- समान अवसर और समान गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त कर सकें। लेकिन आज भी अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के बच्चों को शिक्षा में अनेक प्रकार की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष बाधाओं का सामना करना पड़ता है। गाँवों में दलित बच्चों के साथ भेदभाव, जनजातीय क्षेत्रों में स्कूलों की अनुपलब्धता, मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में शैक्षिक पिछड़ापन और लड़कियों की स्कूली ड्रॉपआउट दर- ये सब उदाहरण हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लक्ष्यों की प्राप्ति में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक कैसे बाधा बनते हैं। इस बाधा के समाधान के लिए 'समान अवसर आयोग' जैसे ढांचे को सक्रिय रूप से कार्यान्वित

करना होगा। स्कूलों को समावेशी स्थान बनाया जाए, जहाँ जातीय, लैंगिक और सांस्कृतिक भिन्नता को सम्मान मिले। शिक्षक प्रशिक्षण में 'सामाजिक-संवेदनशीलता' एक अनिवार्य घटक हो, ताकि वे बच्चों की विविध पृष्ठभूमियों को समझ सकें। लिंग-तटस्थ पाठ्यक्रम, सामाजिक समानता छात्रवृत्तियां और ब्रिज कोर्स के माध्यम से वंचित वर्गों के लिए शिक्षा को आकर्षक और सुलभ बनाया जा सकता है।

राज्यों की असमान प्रतिबद्धता

राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करना राज्यों की जिम्मेदारी है, लेकिन अभी तक राज्यों की तत्परता और नीति के प्रति प्रतिबद्धता में भारी असमानता देखने को मिल रही है। कुछ राज्य जैसे कर्नाटक, मध्यप्रदेश, उत्तराखंड और गुजरात राष्ट्रीय शिक्षा नीति को प्राथमिक स्तर पर लागू करने के लिए सक्रिय दिखे हैं, वहीं कई अन्य राज्य अभी नीतिगत स्पष्टता या राजनीतिक कारणों से पीछे हैं। राज्यों के पाठ्यक्रम बोर्ड, प्रशासनिक ढांचे, शिक्षकों की स्थिति और वित्तीय क्षमताएं बहुत भिन्न हैं। ऐसे में वन साइज फिट ऑल मॉडल व्यवहारिक नहीं हो सकता। कई राज्यों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लेकर शिक्षक संघों और छात्र संगठनों में असमंजस और विरोध की स्थिति बनी हुई है, जो इसके क्रियान्वयन को और धीमा करता है। इस बाधा के समाधान के लिए केंद्र सरकार को राज्य क्षमता निर्माण निधि बनाना चाहिए और राज्यों को अनुकूलित कार्यान्वयन ढांचे प्रदान करने चाहिए। नीति आयोग या एनसीईआरटी को राज्यों के प्रदर्शन का स्वतंत्र मूल्यांकन करना चाहिए और सर्वोत्तम अभ्यास विनिमय प्लेटफॉर्म के जरिए एक राज्य के नवाचारों को दूसरे राज्यों तक पहुँचाना चाहिए। साथ ही, राज्यों को स्पष्ट निर्देश और समयबद्ध कार्ययोजना दी जाए, जिससे राष्ट्रीय लक्ष्य एकरूपता से पूरे हो सकें।

वित्तीय प्रतिबद्धता की कमी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में यह स्पष्ट कहा गया है कि देश को शिक्षा पर अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का कम से कम 6% खर्च करना चाहिए। लेकिन वर्तमान में यह आंकड़ा लगभग 3% के आसपास ही है। इस नीति को लागू करने के लिए अनुमानित रूप से लाखों करोड़ रुपये की आवश्यकता है, लेकिन केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर शिक्षा बजट में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पाई है। बिना पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के, न तो शिक्षक प्रशिक्षण हो सकता है, न डिजिटल संरचना सुधर सकती है और न ही नई शिक्षण विधियां अपनाई जा सकती हैं।

इससे नीति केवल एक कागजी दस्तावेज बनकर रह जाएगी। इस बाधा के समाधान के लिए एक समर्पित एनईपी फंड की स्थापना की जानी चाहिए, जिसमें केंद्र, राज्य, निजी क्षेत्र और ब्ै की साझेदारी हो। इसके अलावा, शिक्षा वित्त में पारदर्शिता और परिणाम आधारित बजट आवंटन को अपनाना चाहिए, जिससे निधियों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित हो सके। साथ ही शिक्षा बांड, सीखने के प्रभाव के मीट्रिक और निवेश पर सामाजिक प्रतिफल (एसआरओआई) जैसे वैकल्पिक मॉडल अपनाकर संसाधनों की स्थायी व्यवस्था की जा सकती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो भारत को 21वीं सदी की ज्ञान-आधारित वैश्विक अर्थव्यवस्था में अग्रणी बना सकती है। यह केवल शिक्षा नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का औजार बन सकती है। लेकिन इसके क्रियान्वयन की राह में अनेक जमीनी बाधाएं हैं- संरचना, संसाधन, सामाजिक विषमता, तकनीकी पहुँच, प्रशासनिक क्षमता और राजनीतिक इच्छाशक्ति। इन बाधाओं को दूर करने के लिए समन्वित प्रयास, निरंतर संवाद और केंद्र-राज्य-पंचायत स्तर पर नीति की आत्मा को आत्मसात करने की आवश्यकता है। शिक्षक केवल आदेशपालक नहीं, नीति के सह-निर्माता बनें। छात्र केवल जानकारी के वाहक नहीं, नवाचार के वाहक बनें। और शिक्षा केवल प्रमाणपत्र नहीं, जीवन के निर्माण की साधना बने। यदि हम इस नीति को केवल एक दस्तावेज मानकर भूल गए, तो यह अवसर एक खोया हुआ सपना बनकर रह जाएगा। लेकिन यदि इसे पूरे राष्ट्र के सहयोग से लागू किया गया, तो यह नीति भारत के शैक्षिक और सामाजिक भविष्य की सबसे शक्तिशाली आधारशिला सिद्ध होगी।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा प्रणाली को 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने का एक क्रांतिकारी प्रयास है। यह नीति न केवल शिक्षण और अधिगम की पारंपरिक अवधारणाओं को बदलती है, बल्कि विद्यार्थियों को रचनात्मकता, नवाचार, कौशल और नैतिक मूल्यों से युक्त नागरिक बनाने की दिशा में एक ठोस आधार प्रदान करती है। 5+3+3+4 की संरचना, मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, बहुभाषिकता और कौशल विकास जैसी पहले शिक्षा को अधिक समावेशी और भविष्य उन्मुख बनाती हैं। हालांकि, इस नीति के कार्यान्वयन में अनेक बाधाएं- जैसे शिक्षकों की तैयारी का अभाव, बुनियादी संरचना की कमी, डिजिटल डिवाइड, सामाजिक-सांस्कृतिक विषमताएं

और वित्तीय संसाधनों की अपर्याप्तता- महत्वपूर्ण चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं। राज्यों के बीच नीति क्रियान्वयन की गति और दृष्टिकोण में असमानता भी एक बड़ी समस्या है। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों, शिक्षा संस्थानों, शिक्षकों और समाज के विभिन्न वर्गों को मिलकर समन्वित प्रयास करने होंगे। शिक्षा में नवाचार को बढ़ावा देना, शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता सुधारना, डिजिटल अवसंरचना को सुदृढ़ करना और शिक्षा पर पर्याप्त बजट आवंटित करना अनिवार्य है। साथ ही, सामाजिक समावेशन को प्राथमिकता देकर यह सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक बच्चे को समान अवसर और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले। यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को केवल एक नीति दस्तावेज न मानकर, एक राष्ट्रीय मिशन के रूप में साकार किया जाए, तो यह भारत को ज्ञान और कौशल के क्षेत्र में विश्व नेतृत्व की ओर अग्रसर कर सकती है। यह नीति शिक्षा को जीवन निर्माण की साधना बना सकती है और भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास की सबसे मजबूत आधारशिला सिद्ध हो सकती है।

संदर्भः

1. Ministry of Education, Government of India. *National Education Policy 2020*. 2020. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
2. Ministry of Education, Government of India. *Guidelines for Multiple Entry and Exit in Academic Programmes Offered in Higher Education Institutions*. 2021. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/abc_doc.pdf
3. University Grants Commission. *Academic Bank of Credits (ABC): Regulations (First Amendment)*. 13 Apr. 2022. https://utsah.ugc.ac.in/
4. Ministry of Education, Government of India. *NIPUN Bharat Guidelines: National Mission on Foundational Literacy and Numeracy*. 2021. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nipun_bharat_eng1.pdf
5. Department of School Education & Literacy, Ministry of Education. *Guidelines on Reading Campaign: A Nationwide Initiative for Creating a Joyful Reading Experience for Children*. 2021. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Guidelines_on_Reading_Campaign.pdf
6. Ministry of Education, Government of India. *All India Survey on Higher Education (AISHE) 2020–21: Final Report*. 2023. https://aishe.gov.in/aishe-final-report/
7. World Bank. *Government Expenditure on Education, Total (% of GDP) — India*. 2024. https://data.worldbank.org/indicator/SE.XPD.TOTL.GD.ZS?locations=IN
8. British Council. *India's National Education Budget 2023–24*. 6 Feb. 2023. https://opportunities-insight.britishcouncil.org/features/indias-national-education-budget-2023-24
9. University Grants Commission – Distance Education Bureau. *Mandatory ABC-ID/DEB-ID for ODL/Online Programmes (Circular)*. 12 Nov. 2024. https://deb.ugc.ac.in/Uploads/Notices_Upload/UGC_20241112154715_1.pdf
10. Ministry of Education, Government of India. *National Education Policy 2020*. 2020. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep_2020.pdf

– आशियाना, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

पर्यटन

छत्तीसगढ़ का धार्मिक आध्यात्मिक स्थलः राजिम

• प्रिया देवांगन 'प्रियू'

छत्तीसगढ़ की राजिम नगरी धार्मिक और आध्यात्मिक केंद्र है, जहाँ तीन नदियों का त्रिवेणी संगम है। यहाँ राजीव लोचन, कुलेश्वर महादेव और मामा-भांजा जैसे प्रसिद्ध मंदिर हैं। माघ मास में राजिम कुम्भ मेला लगता है, जो पांचवां कुम्भ माना जाता है। यह स्थान श्रद्धालुओं के लिए बहुत पवित्र और लोकप्रिय तीर्थस्थल है।

छत्तीसगढ़ धर्म और अध्यात्म का एक विशिष्ट स्थल है, जहाँ देवी-देवताओं का वास है। स्वंयभू भगवान भोलेनाथ की शिवलिंगें प्रदेश के कोने-कोने में विराजमान हैं। इस भूमि को श्धान का कटोराश भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ धान की समृद्धि और उत्पादन अपार है। इसी प्रकार, छत्तीसगढ़ को तीर्थस्थलों का पावन प्रदेश भी माना जाता है, जिसमें अनेक पावन तीर्थ एवं दार्शनिक स्थल सम्मिलित हैं। इनमें से राजिम नगरी अत्यंत विख्यात है, जिसे पूर्व में 'कमल क्षेत्र' के नाम से जाना जाता था।

राजिम नगरी का त्रिवेणी संगम

राजिम नगरी महानदी, पैरी और सोंढूर तीन पवित्र नदियों के संगम स्थल पर स्थित है, अतः इसे त्रिवेणी संगम के नाम से संबोधित किया जाता है। यह स्थल छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर के निकट गरियाबंद जिले में बसा हुआ है। गरियाबंद की भूमि चारों ओर हरी-भरी हरियाली से घिरी हुई है, जहाँ धान के खेतों के साथ-साथ रंग-बिरंगे पुष्पों की मनमोहक खुशबू वातावरण को सुगंधित कर देती है। माघ मास में यहाँ भव्य कुम्भ मेला आयोजित होता है। राजिम नगरी को भारत के पाँच प्रमुख तीर्थस्थलों में गिना

जाता है। माघ पूर्णिमा से लेकर शिवरात्रि तक यहाँ मेला-पट आयोजित होता है, जो लगभग पंद्रह दिनों तक चलता है। छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा इस मेले को 'पाँचवा कुम्भ' का दर्जा प्रदान किया गया है।

राजीव लोचन मंदिर का चमत्कार

राजिम में प्रतिष्ठित राजीव लोचन भगवान विराजमान हैं, और इस भूमि को अत्यंत पवित्र माना जाता है। कहा जाता है कि वनवास काल में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी ने अपने कुलदेवता महादेव की पूजा-अर्चना इसी क्षेत्र में की थी। राजीव लोचन के संबंध में एक लोककथा प्रसिद्ध है। राजिम नामक एक स्त्री, जो तेल बेचने का कार्य करती थी, एक दिन तेल का पात्र सिर पर लेकर जा रही थी। अचानक वह जमीन में दबे एक पत्थर से टकरा गई, जिससे तेल पात्र खाली हो गया। वह अत्यंत चिंतित हो गई और भगवान से प्रार्थना करने लगी कि यह कैसे हो गया, अब मैं क्या करूँ? अपनी आंखें बंद कर वह श्रद्धा से विनती करने लगी। धीरे-धीरे पात्र को उठाते समय उसने पाया कि वह पात्र तेल से पूर्ण हो चुका है। इस अद्भुत चमत्कार से वह अत्यंत प्रसन्न हुई। जब उसने यह अनुभव अपने परिवार को सुनाया, तो कोई विश्वास नहीं कर पाया। अगले दिन भी तेल खत्म न हुआ। उसके परिवार ने उस पत्थर को हटाया, तो वहाँ भगवान की एक मूर्ति मिली। वे मूर्ति को अपने घर ले आए और वहाँ स्थापित किया। इसके बाद उनका व्यापार फलने-फूलने लगा और गरीबी दूर हो गई।

एक बार इस क्षेत्र के राजा जगतपाल को स्वप्न में राजीव लोचन भगवान का दर्शन हुआ, जिसमें भगवान ने कहा कि इस मूर्ति को मंदिर में स्थापित कराना चाहिए। राजा ने अगले दिन राजिम के घर जाकर अपना स्वप्न सुनाया, पर राजिम ने मना कर दिया। राजा जब जिद करने लगे, तो राजिम रोने लगी और कहा कि मैं अपने भगवान को दूर नहीं कर सकती। तब राजा ने सैनिकों को आदेश दिया कि वे मूर्ति जबरदस्ती ले आएं। मूर्ति इतनी भारी हो गई थी कि उठाना संभव

नहीं था। फिर भगवान ने राजा के स्वप्न में प्रकट होकर कहा कि जब तक राजिम की अनुमति नहीं मिलेगी, मैं हिल नहीं सकता। अंततः राजा राजिम के

पास गया और बोला कि आपकी इच्छा का सम्मान किया जाएगा, बस इस मूर्ति को मंदिर में स्थापित करवा दीजिए। राजिम ने कहा कि मुझे तो मेरा भगवान मिल गया है, अब मुझे कुछ भी चाहिए नहीं। आप इस भगवान के नाम को मेरे नाम से पुकारिए, ताकि सम्पूर्ण जगत इसे मेरे नाम से जाने। राजा ने उनका सम्मान किया और तभी से वह स्थान 'राजिम नगरी' के नाम से विख्यात हुआ।

महादेव मंदिर

नदी के मध्य स्थित कुलेश्वर महादेव मंदिर अत्यंत पावन और प्राचीन है। मान्यता है कि वनवास काल में माता सीता ने अपने व्रत की पूर्णता हेतु इसी नदी में स्नान कर बालू से शिवलिंग का निर्माण किया था। अपनी पाँचों उंगलियों से इस शिवलिंग पर जल अर्पित करते समय शिवलिंग में पाँच छेद बन गए, इसलिए इसे 'पंचमुखी महादेव' के नाम से जाना जाता है। आज भी माता सीता की उंगलियों के निशान इस शिवलिंग पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। देश-विदेश से

भक्तजन यहाँ पंचमुखी महादेव के दर्शन को आते हैं। माघ पूर्णिमा के अवसर पर यहाँ विशाल कुम्भ मेला लगता है, जिसमें पंद्रह दिनों तक निरंतर छत्तीसगढ़ी सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होते हैं। इस मेले में राजनेता, फिल्म कलाकार एवं अनेक गणमान्य व्यक्ति अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। भक्तजन इस धार्मिक स्थल को अपनी श्रद्धा का वरदान मानते हुए स्वयं को धन्य समझते हैं।

मामा-भांजा मंदिर

राजीव लोचन मंदिर से बाहर निकलते ही मामा-भाँजा का मंदिर दिखाई देता है। यह कथित है कि कुलेश्वर महादेव और राजीव लोचन मंदिर का दर्शन तब पूर्ण माना जाता है जब श्रद्धालु मामा-भांजा के दर्शन भी कर लेते हैं। इनके दर्शन के बिना तीर्थयात्रा अधूरी मानी जाती है। प्राचीन लोककथा के अनुसार, कभी नदी में बाढ़ आई थी और कुलेश्वर मंदिर डूबने लगा था, तब एक आवाज सुनाई देती- 'बचाओ! बचाओ! मामा, मैं डूब रहा हूँ।' तब मामा अपने भांजे

को बचाने नाव लेकर नदी पार करते और भांजे को सुरक्षित वापस लाते हैं। उस घटना के बाद से मामा और भांजा कभी एक ही नाव में नदी पार नहीं करते। नदी के किनारे स्थित मामा का मंदिर जैसे ही बाढ़ के जल से स्पर्श होता है, बाढ़ का जल घटने लगता है। चाहे जितनी भी तीव्र बाढ़ आए, कुलेश्वर महादेव मंदिर कभी जलमग्न नहीं होता। राजिम के त्रिवेणी संगम में अस्थि विसर्जन के लिए भी श्रद्धालु दूर-दूर से आते हैं, यहाँ मोक्ष की प्राप्ति होती है। लोग यहाँ पिण्डदान एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठान संपन्न कराते हैं।

कुम्भ मेला एवं दार्शनिक स्थल

माघ पूर्णिमा को यहाँ भव्य कुम्भ मेले का आयोजन होता है, जिसमें देश-विदेश से श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ती है। पंद्रह दिनों तक यह मेला जारी रहता है। नदी के किनारे विभिन्न राज्यों से आए व्यापारी अपना सामान बेचते हैं और श्रद्धालु मेला एवं तीर्थस्थल का आनंद लेते हैं। यहाँ अनेक साधु-संत चंदन-बंदन लगाए, त्रिशूल धारण किए, अंग भभूति से आच्छादित नागा साधु और संन्यासी घूमते रहते हैं। साधु-संतों के साथ-साथ आम जन भी इस अवसर पर नदी में पवित्र स्नान करते हैं। अपने जीवन में कम-से-कम एक बार प्रत्येक व्यक्ति को इस पावन राजिम तीर्थ स्थल का दर्शन अवश्य करना चाहिए।

– गरियाबंद, छत्तीसगढ़

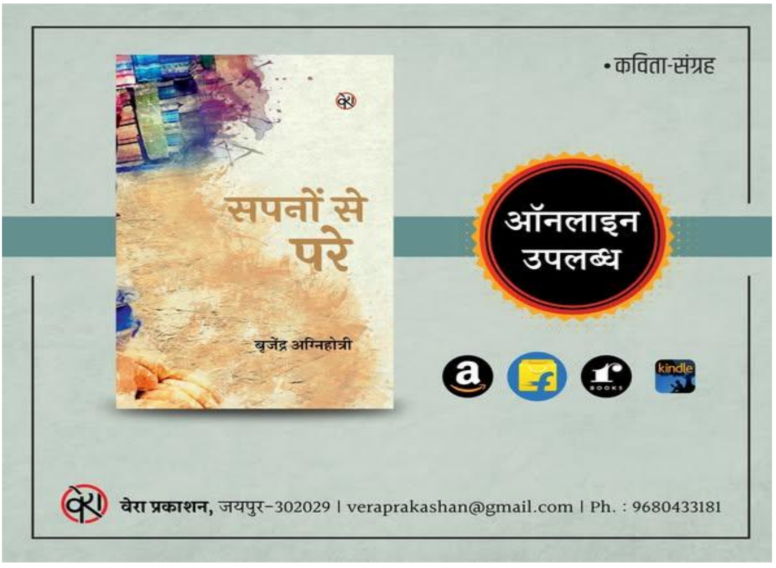

पर्यटन

मनाली के एकांश का सौंदर्य

• अनिता रश्मि

यह यात्रा-वृत्तांत मनाली और उसके आसपास के प्राकृतिक सौंदर्य, साहसिक गतिविधियों और सांस्कृतिक विविधताओं से सजी एक संवेदनशील और जीवंत झलक है, जहाँ लेखक प्रकृति, परंपरा और स्थानीय जीवन से आत्मिक रूप से जुड़ता है।

हिमाचल प्रदेश के सुरम्य नगर मनाली की चार दिनी यात्रा एक अद्भुत अनुभव बन गई। व्यास नदी के पुल को पार करते हुए हम कभी महल रोड की रौनक में खो जाते, तो कभी बौद्ध मठों की शांति में डूब जाते। हिडिम्बा मंदिर की पवित्रता और प्राचीनता ने भी मन को गहराई तक छू लिया। वहाँ से बहती विशाल व्यास नदी, जिसकी गर्जना दूर तक सुनाई देती थी, उसमें राफ्टिंग करते साहसी युवाओं को देखना अपने आप में एक अलग रोमांच था कृ मानो जल और जीवन के संघर्ष का जीवंत दृश्य। मनाली का स्टेट बैंक हॉलीडे होम एक ऊँची पर्वतीय चोटी पर स्थित है कृ एक ऐसा स्थान जहाँ से हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं का अविस्मरणीय दृश्य आँखों को असीम सुख प्रदान करता है। उसी के ठीक ऊपर एक और सुंदर भवन, हरे-भरे बागीचे से सुसज्जित, कमरे की खिड़की से झाँकते ही दृष्टिगोचर होता। नीचे की ढलान पर सेबों का बगीचा फैला था कृ छोटे-छोटे हरे कच्चे सेब डालियों से लदे हुए। उन्हें देखकर बार-बार यही ख्याल आता कि यदि सेब के मौसम में आते, तो शाखों पर झूलते लाल-लाल सेबों का दृश्य कितना मोहक होता!

मनाली में जहाँ भी गुलाबों के पौधे दिखे, उनकी भव्यता ने ध्यान खींचा। गुलाब इतने बड़े और गाढ़े रंग के थे कि उनकी ओर आँखें बार-बार लौट जातीं। उन्हें तोड़ने की न इच्छा थी, न अनुमति। बस, उन घने, लाल गुलाबों के साथ तस्वीरें खिंचवाकर ही संतोष कर लिया। हर बार जब कहीं निकलने को तैयार होते, वे गुलाब मानो हमें रोकने को पुकारते। इस बीच, पर्वतों का एक और रूप भी देखने को मिला- वे पर्वत, जो गर्मियों में भी आधे पिघले और

आधे जमे हुए थे, एक रहस्यमयी सौंदर्य का आभास देते। श्वेत-नीले या श्वेत-काले रंगों में रंगी पर्वत-श्रेणियाँ, अपने अधूरेपन में ही एक पूर्णता की अनुभूति करा रही थीं।

गोंपा बौद्ध मठ

मनाली स्थित गोंपा बौद्ध मठ, बौद्ध धर्म का एक प्रमुख तीर्थस्थल है। इसका निर्माण 1960 में हुआ था और यह आज भी तिब्बती संस्कृति और अध्यात्म का सजीव प्रतीक बना हुआ है। तिब्बत की निकटता के कारण मॉल रोड से लेकर इस मठ तक हर जगह तिब्बती चित्रकला, हस्तशिल्प और धार्मिक सामग्री का दर्शन हुआ। मठ की छत, जो पीले रंग की पैगोडा शैली में निर्मित है, दूर से एक कलात्मक टॉवर-सी प्रतीत होती है। वहाँ घूमते हुए एक अजीब-सी आत्मिक शांति का अनुभव हुआ- मानो बाहरी शोर से कटकर किसी दिव्य संसार में प्रवेश कर गए हों। राजकुमार सिद्धार्थ के बुद्ध बन जाने और उनके विचारों के हिमालय तक पहुँच जाने की अनुभूति वहाँ और गहराई। स्मृति में बोधगया का बोधिवृक्ष उभर आया- वही वृक्ष, जिसकी छांव में सिद्धार्थ ने ज्ञान प्राप्त किया था। हाल ही में की गई उस तीर्थ-यात्रा की स्मृतियाँ पुनः सजीव हो उठीं।

छोटी-सी भूमि से उठकर बुद्ध ने एशिया की पर्वतीय चोटियों तक, अपने विचारों की ज्योति फैलाई। हिमालय के अनेकों स्थलों पर बौद्ध स्तूप, मठ, पुस्तकालय और केसरिया वस्त्रों में लिपटे भिक्षु, बुद्ध की शिक्षाओं के जीवंत प्रमाण हैं। यहाँ भी हर ओर केसरिया रंग की छाया फैली हुई थी- घुटे हुए सिर, उज्ज्वल भाल और संयमित जीवनशैली वाले वे भिक्षु एक अलौकिक वातावरण का निर्माण कर रहे थे। जब वहाँ स्थित प्रार्थना चक्र (प्रेयर व्हील) को घुमाया, तो ऐसा लगा मानो वहाँ की हर बुदबुदाहट एक ही बात कह रही हो- 'हर धर्म का एक ही उद्देश्य है- शांति, करुणा और परोपकार।' मठ के चारों ओर बसी शांति का साम्राज्य, बीते वर्षों में सिक्किम में देखे गए बौद्ध मठों की यादें भी ताजा कर गया। छोटे-छोटे रंगीन पताकाओं (प्रेयर फ्लैग्स) की लहराती कतारें हवा में उड़ती हुई जैसे हर दिशा में शांति का संदेश दे रही थीं। खुशी इस बात की भी हुई कि सम्राट अशोक के प्रयास आज भी जीवित हैं। कलिंग युद्ध के पश्चात उन्होंने जिस अहिंसा और बौद्ध धर्म को अपनाया और अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा के माध्यम से जिसे दिग-दिगंत तक फैलाया, उसका प्रभाव

आज भी इन सुदूर हिमालयी चोटियों तक दृष्टिगोचर है। और तब एक प्रश्न मन में उठा– 'यदि अशोक आज होते, तो यह दृश्य देखकर क्या अनुभव करते?' इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं था... और शायद होना भी नहीं चाहिए. .. क्योंकि कुछ उत्तर मौन में ही मिलते हैं।

हिडिम्बा मंदिर

एक दिन स्थानीय बगीचों में घूमने के बाद हमारा वाहन चालक हमें हिडिम्बा मंदिर की ओर ले चला। यह मंदिर लकड़ी और पत्थरों से निर्मित एक प्राचीन देवालय है, जो महाभारत के वीर भीम की पत्नी हिडिम्बा देवी को समर्पित है। वर्ष 1553 में निर्मित यह मंदिर पैगोडा शैली की स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण है और डूंगरी पार्क के मध्य स्थित है। इसकी चार-स्तरीय छत, जो शिवालय आकार में बनी है, तथा नक्काशीदार प्रवेश द्वार दर्शकों का ध्यान सहज ही आकर्षित करते हैं। मंदिर के विशाल परिसर में प्रवेश करते ही, हम देवदार के घने वृक्षों से घिरे एक मनोहारी वातावरण में पहुँच गए। तभी, आसपास की दो-तीन महिलाओं ने हमें घेर लिया और अपनी जिद में हमारी पुत्री अनुभा के कंधे और सिर पर कोमल, श्वेत खरगोश रख दिए। यद्यपि खरगोशों की मोहकता मन को लुभा रही थी, परंतु यह दृश्य कहीं न कहीं जीवन-यापन की विवशता को भी प्रकट कर रहा था। हमने कुछ धनराशि दी और मंदिर की ओर बढ़ चले। चारों ओर खड़े विराट देवदार, अपनी ऊँचाई से मानो मनुष्य के अस्तित्व को चुनौती दे रहे थे। वे न केवल भौतिक रूप से, बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि से भी मनुष्य को उसकी सीमा का भान करा रहे थे। उनके सान्निध्य में खड़े होकर मन में यही विचार उठा– 'कद भले ही छोटा हो, आत्मा की ऊँचाई ही वास्तविक ऊँचाई है।'

धूप में तपते हुए भी मंदिर के प्रवेश द्वार से लेकर नीचे तक पर्यटकों की लंबी कतारें लगी थीं। यहाँ हिडिम्बा देवी की आराधना दुर्गा के रूप में की जाती है। जैसे ही भीतर पहुँचे, सामने एक आधी चट्टान दिखाई दी, जिसके समीप श्रद्धालु पूजा में लीन थे। यह देखकर मन में एक कौतूहल जागा– 'कैसे एक वनवासिनी राक्षसी देवी बन गई, इतनी पूजनीय? क्या लोक की श्रद्धा और प्रेम किसी को भी देवता बना सकते हैं?' मंदिर दर्शन के पश्चात हम तीनों देर तक देवदारों के साये में विचरते रहे। मैं अनुभा के संग एक लोहे के झूले पर

बैठी, प्रकृति की दिव्यता के प्रति मौन नमन करती रही। दूर-दूर तक फैले खुले मैदानों और आकाश से बातें करते वृक्षों को निहारते हुए बार-बार वही विचार मन में उतर आता- 'प्रकृति से बड़ा चित्रकार आज तक कोई नहीं हुआ... और न होगा।'

विराट पार्क में पैदल पथ पर चलते-चलते हम अन्य पर्यटकों के साथ-साथ आगे बढ़ते गए। हमारा वाहनचालक आनंद अब स्थानीय गाइड बन गया था। उसने भीम और हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच की पूजा के विषय में जानकारी दी और एक विशेष वृक्ष की ओर इशारा किया। उसी वृक्ष के नीचे घटोत्कच की एक छोटी-सी प्रतिमा रखी थी, जिस पर रोली, अक्षत और पुष्पों से पूजा की गई थी।

'साहब जी, यहाँ घटोत्कच का एक बड़ा मंदिर बनने वाला है... जल्दी बनेगा।'

मैंने कुछ अनभिज्ञता से पूछा, 'घटोत्कच की भी पूजा होती है? वह तो राक्ष...'

'यहाँ तो दोनों, माँ और पुत्र, पूजनीय हैं। पूरी दुनिया में हिडिम्बा और घटोत्कच का कोई और मंदिर नहीं है, साहब जी।' -आनंद का स्वर अब भावनाओं से भीगा हुआ था।

मंदिर दर्शन के पश्चात वह हमें पास ही स्थित संग्रहालय में ले गया। वहाँ प्रवेश करते ही ऐसा लगा, मानो प्राचीन समय की धड़कनें मूर्त रूप में हमारे सामने उपस्थित हो गई हों। मूर्तियाँ, पारंपरिक आटा चक्कियाँ, स्थानीय पोशाकें, आभूषण, बर्तन, मुखौटे, वाद्य यंत्र और नृत्य वेशभूषाएं- सब कुछ जैसे अतीत को वर्तमान में खींच लाने का प्रयास कर रहे थे। याद आया, यहीं कहीं 'जब वी मेट' फिल्म का गीत 'हाँ! कोई तो होगा...' फिल्माया गया था। करीना कपूर ने स्थानीय वेशभूषा धारण कर नृत्य किया था, और उनके साथ के नर्तकों के चेहरे पर ऐसे ही मुखौटे सजे थे।

मैंने संग्रहालय की अधिकांश वस्तुओं के नाम डायरी में संजो लिए थे- यात्रावृत्त लेखन की योजना थी। किंतु, जीवन की दौड़, स्थान और घर बदलते रहने की आपाधापी में वह डायरी कालांतर में गुम हो गई- जैसे कुछ स्मृतियां, जिन्हें हम हर बार छूना चाहते हैं, पर वे फिसलती चली जाती हैं। संग्रहालय के ठीक सामने एक चीनी रेस्तरां था, और उसके आगे एक विस्तृत मैदान। ऐसा

प्रतीत होता था, मानो इस स्थान को पहाड़ को काटकर गढ़ा गया हो- एक ऐसी जगह, जहाँ अतीत और वर्तमान एक साथ सांस लेते हों।

वशिष्ठ मुनि की आश्रयस्थली

अगले दिन प्रातःकाल ही हमारी गाड़ी मनाली से मात्र तीन किलोमीटर दूर स्थित वशिष्ठ ग्राम के एक निवास के समीप आकर रुकी। वाहन से उतरने ही वाले थे कि दृष्टि सामने के वृक्ष पर पड़ गई- शाखाओं पर लटकी थीं छोटी-छोटी, लाल रंग की, चटकीली चेरी।

'अरे! यह चेरी है...ताजा चेरी!'

यह दृश्य बाजार की कृत्रिमता से परे, प्रकृति की गोद में उपजे सौंदर्य का एक सहज, आह्लादकारी रूप था।

जैसे-जैसे हम पगडंडी पर आगे बढ़ते गए, स्थानीय महिलाएं खरगोशों को गोद में लिए हमारे समीप आती रहीं। उनकी भी वही जानी-पहचानी जिद- नन्हें, कोमल खरगोश को गोद में लेने की। अधिकतर महिलाएं पारंपरिक पट्टू वस्त्रों में लिपटी हुईं, सिर पर फूलदार रंगीन चुनरी बांधे थीं। एक ओर दुकानों की कतारें थीं, जिनमें स्थानीय परिधान, खिलौने, सौंदर्य प्रसाधन, पूजा सामग्री सजी थीं- और दुकानदार उम्मीद भरी नजरों से पर्यटकों को निहारते।

सड़क के मोड़ पर अचानक एक आकृति कूद पड़ी- लाल रंग से पुती देह, मुख पर वानर रूपी मुखौटा, लंबी कृत्रिम पूंछ और कमजोर सा शरीर। स्वयं को हनुमान के रूप में प्रस्तुत करता यह युवक किसी भी दृष्टि से हमारे आराध्य बजरंगबली के स्वरूप से मेल नहीं खा रहा था। फिर भी वह उछल-कूद मचाकर श्रद्धा और मनोरंजन के बीच की उस महीन रेखा पर चलने का प्रयास कर रहा था। हम धीरे से आगे बढ़ निकले।

अब हम एक प्राचीन लकड़ी के मंदिर के द्वार पर खड़े थे- यह था महर्षि वशिष्ठ के आश्रम का प्रवेशद्वार। भीतर प्रवेश करते ही दाहिनी ओर एक छोटी सी खुली जगह दिखी, जहाँ कुछ श्रद्धालु गंधकयुक्त जल में स्नान कर रहे थे- मानो शरीर को ही नहीं, आत्मा को भी शुद्ध कर रहे हों। आँगन पार कर हम आगे बढ़े तो सामने के पथरीले बरामदे पर एक विदेशी साधु पद्मासन में ध्यानमग्न दिखाई दिए। छत भी पुराने पाथर की टाइलों से बनी थी। हमारे आने-जाने की चहल-पहल से पूर्णतया अचेत, वे साधु किसी और ही लोक में

स्थित प्रतीत हो रहे थे। उनके उस शांत भाव को देखकर हम सबके चेहरों पर एक मौन मुस्कान उभर आई। फिर हम देवालय की ओर मुड़े। एक पुजारिन, आरती की थाली के पास आलथी-पालथी मारे बैठी थी। भीतर अंधकार में आलोकित मूर्ति के सम्मुख श्रद्धा से झुका मन अपने आप ही मौन हो गया। पुजारिन ने हाथों में प्रसाद दिया और कुछ कहा, जो शायद स्थानीय भाषा थी। हमें समझ न आया, परंतु उसके स्वर में अपनापन था। यहाँ भी वही अनुभूति हुई कृ महिलाओं की सशक्त उपस्थिति न केवल सामाजिक, बल्कि धार्मिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी स्पष्ट है। हमारा सहयात्री आनंद वहीं रुक गया- गंधकयुक्त जल से पवित्र स्नान की इच्छा लिए। उसने कहा, 'आप लोग राम मंदिर हो आइए, मैं यहीं स्नान करके वहीं आ जाता हूँ।'

राम मंदिर की ओर जाते हुए सीढ़ियों पर एक नन्हा गोल-मटोल बच्चा, नल से पानी पीता हुआ मिला। हमारे कदमों की आहट भी उसकी तल्लीनता को भंग न कर सकी। वह उसी मासूमियत में नलके से खेलता रहा। राम, लक्ष्मण और सीता को समर्पित यह देवालय एक शांतिपूर्ण वातावरण में स्थित था। बाईं ओर के देवस्थान में तीनों की सुंदर प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित थीं। एक शिलालेख पर दृष्टि पड़ी, जिससे मंदिर के इतिहास और स्थानीय आस्था का परिचय मिला।

व्यास नदी के तट पर बसा यह वशिष्ठ ग्राम वास्तव में एक पौराणिक आस्था केंद्र है। किंवदंती है कि बाल अपराधों से आहत होकर ऋषिवर वशिष्ठ ने आत्मत्याग हेतु व्यास नदी में प्रवेश करने का प्रयास किया, परंतु नदी ने उन्हें स्वीकारने से इनकार कर दिया। तब उन्होंने इसी भूमि पर तपस्या आरंभ की। यह सोचते ही मन में गूँज उठा- 'पौराणिक ग्रंथों में जिन पात्रों को शब्दों में बाँध रखा था, वे यहाँ सजीव प्रतीत हो रहे थे।' और इसी भाव के साथ मन में एक ही वाक्य गूँजता रहा- 'यूँ ही नहीं कहते हिमाचल प्रदेश को देवभूमि!' यह स्थान अपने सल्फर युक्त जल स्रोतों के लिए भी प्रसिद्ध है। मान्यता है कि लक्ष्मण ने ही अपने बाण से भूमि में प्रहार कर इन स्रोतों को उत्पन्न किया था।

मनाली के पर्यटन स्थल, जहां सौंदर्य और रोमांच एक साथ मिलते हैं, ने हमें जीने का उत्साह दोबारा दिया। वहाँ ट्रैकिंग, पैराग्लाइडिंग, राफ्टिंग जैसे साहसिक अनुभवों के साथ प्राकृतिक सौंदर्यता का भी भरपूर आनंद मिला। अनुभा ने रस्सी के सहारे उलट कर व्यास नदी पार की- एक साधारण, लेकिन दिल को छू लेने वाला पारगमन का साधन। नदी की कल-कल करती धारा के ऊपर

से पुल के भांति यह तरीका स्थानीय किशोरों और बच्चों के लिए आज भी आम है, और अब पर्यटक भी इसका आनंद लेने लगे हैं। उनके उत्साह और चहल-पहल की अनुभूति, नदी के किनारों पर रस्सियों से झूलते लोगों के हुजूम का दृश्य- सचमुच मन को आनंदित कर देने वाला था।

सोलंग घाटी में हमारा साहसिक रोमांच और भी ऊँचाई पर पहुँच गया। व्यास नदी और सोलंग गाँव के बीच बसी इस घाटी में पैराग्लाइडिंग से लेकर घुड़सवारी, ओपन-एयर जीप, यहां तक कि बर्फ में पारदर्शी बड़ी गेंद में लुढ़कना कृ रोमांच की कोई कमी नहीं थी। सर्दियों में जहां सब कुछ बर्फ से ढंका हुआ होता है, गर्मियों में घाटी से गेंद में लुढ़कते हुए गिरते समय आत्मा तक की शिथिलता मिट जाती है। इस घाटी की रमणीयता ने हमें ताजगी की ऐसी सैर कराई कि थकन का नामोनिशान ही नहीं रहा।

मनाली में स्नोबोर्डिंग और स्लेजिंग का अनुभव भी उत्कृष्ट था। बर्फीले दृश्यों के बीच ये खेल मानो प्रकृति की छवि को जीवंत कर देते हैं। चारों ओर सेबों के बागीचे, कच्चे-खट्टे सेबों से लदे हुए, जो शाखाओं से लटकते वहीं दिखते, एक असाधारण आनंद का निर्माण करते। शामें बिताना था तो माल रोड एक स्वप्निल अनुभव था। दुकानें, तिब्बती गर्म कपड़ों की रैली, कढ़ाईदार शॉलें- जैसे गर्म उपहारों में समा कर रख दी गई हों। बौद्ध भिक्षुओं का शांति-पूर्ण विचरण, पार्कों में फव्वारों की ठंडी बूँदें, नर्तकों की पीले परिधानों में सजधज- सबने मन को गहना सा संवार दिया। हालांकि यह मनाली का माल रोड शिमला के समकक्ष भव्य नहीं लगा, लेकिन इसकी शामें विशिष्ट रूप से सुखद थीं। हिमालयी औषधीय जड़ी-बूटियाँ भी एक और रोमांच बनकर उभरीं। वैद्य और उनके एजेंट आधुनिक चिकित्सा की मार से डरने के बजाय यात्रियों के पास खुद जाकर जड़ी-बूटियाँ पहुँचाने लगे। आयुर्वेद के समर्थक ओम जी ने भी उस एजेंट से घर पर कई बार जड़ी-बूटियाँ मंगवाईं। मनाली से 21 किलोमीटर दूर, गूढ़ सुंदर नग्गर वादियां हमारे स्वागत में थीं- रंग-बिरंगी हवाएं, बादलों का जैसे ऊँचे पहाड़ों पर रूई का लेपन, खेतों की हरी चादर। वहां का प्राचीन किला, जिसकी स्थापना राजा विशुद्पाल ने की थी, अब सुंदर हेरिटेज होटल में बदल चुका था।

वापस लौटते हुए हमने कुल्लू मार्ग पकड़ा। सूर्य की किरणें फैल चुकी थीं, और किन्नौरी टोपी पहनकर काम में जुटे लोग जैसे कुल्लू की विरासत

वाहक बन दिख रहे थे। कुल्लू, जिसे मनाली की बहन कहा जाता है, अपनी देवभूमि की भव्यता दशहरे में और भी जीवंत हो उठती है। जैसे नदी, विपाशा, हमारा साथ देती हुई चल पड़ी हो, उसकी कुछ वादियां हमें उत्साह से भर देतीं। रास्ते में राहगीर भेड़ों और बकरियों के साथ चलते मिले- पर्वत हिम की मिठास धीरे-धीरे उतरती जा रही थी। एक खेत में, खेतों के ऊँचाई से नीचे उतरती दो श्रमशील महिलाएं, घास के बड़े-गट्ठरों संग, हमें आत्मीयता से मिले। उनके श्रम-प्रधान चेहरे पर स्वदेशी हँसी खिली जिसे देखकर मैं कह सकती हूँ कि सबसे निर्मल मुस्कानें कर्म-रत सिरमौर स्त्रियों को ही मिलती हैं। आज हिमालयी क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा संचालित होटल उद्योग भी खूब फल-फूल रहा है। लोग अपने-अपने घरों को सजाकर अतिथिगृह बना रहे हैं।

—1 सी, डी ब्लॉक, सत्यभामा ग्रैंड, कुसई, डोरंडा, राँची– 834002,

"समय के सिवा कोई इस लायक़ नहीं होता कि उसे किसी कहानी का हीरो बनाया जाए।"

–राही मासूम रज़ा

केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 1 अप्रैल 1911 को उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के कमासिन गाँव में हुआ था, और उनकी मृत्यु 22 जून 2000 को हुई। केदारनाथ अग्रवाल हिंदी के प्रगतिशील कविता-धारा के एक प्रमुख कवि थे, जिनका काव्य-संग्रह 'युग की गंगा' स्वतंत्रता से पहले प्रकाशित हुआ था। उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाते हुए जनसाधारण के जीवन की गहरी संवेदना को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया। केदारनाथ की कविताओं में भारत की मिट्टी की खुश्बू, सरलता और आस्था झलकती है। उनका जीवन अनुभव तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है- बचपन से बी.ए. तक, वकालत से सेवानिवृत्ति तक, और सेवानिवृत्ति से मृत्यु तक। वे ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े और अपने पिता से कविता की प्रेरणा पाई। उनकी लेखनी में सामाजिक न्याय और जन जीवन की लड़ाई स्पष्ट रूप से दिखती है। केदारनाथ अग्रवाल की लगभग 23 कविता संग्रह, निबंध, उपन्यास और यात्रा संस्मरण प्रकाशित हुए, जो हिंदी साहित्य में उनकी विशिष्ट पहचान बनाते हैं। उनकी रचनाएं कई भाषाओं में अनूदित हुई हैं और उनके सम्मान में 'केदार सम्मान' भी दिया जाता है।

कविता

दूर कटा कवि मैं जनता का

• केदारनाथ अग्रवाल

दूर कटा कवि
मैं जनता का,
कच-कच करता
कचर रहा हूँ अपनी माटी,
मिट-मिट कर मैं
सीख रहा हूँ
गतिपल जीने की परिपाटी।
कानूनी करतब से मारा
जितना जीता उतना हारा
न्याय-नेह सब समय खा गया
भीतर-बाहर धुआँ छा गया।
धन भी पैदा नहीं कर सका
लूट खसोट जहाँ होती है
मेरी ताब वहाँ खोटी है
मिली कचहरी इज्जत थोपी
पहना थोथा उतरी टोपी
लिए हृदय में कविता थाती
मैं ताने हूँ अपनी छाती।

साभारः चुनी हुई कविताएंः केदारनाथ अग्रवाल, सं. नरेंद्र पुंडरीक, अनामिका प्रकाशन, सं. 2011, पृष्ठ 56

शबनम आलम

प्रसिद्ध हिंदी कवयित्री हैं। इनकी रचनाएं सामाजिक और नारी सशक्तिकरण जैसे महत्वपूर्ण विषयों को समर्पित हैं। उनका लेखन संवेदनशील एवं सशक्त है और हिंदी साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

दहलीज

दहलीज
लड़कियों के जीवन में
एक पड़ाव है, क्योंकि
उन्हें पता नहीं
आज यहां, कल कहां होंगी!

एक दहलीज
मायके की होती है
जहां वो हँसती-खिलखिलाती
सारी जिम्मेदारियों से मुक्त
आजाद पक्षी होती हैं, पर
यह पल कुछ समय के लिए होता है!

दूसरी दहलीज
ससुराल की होती है
जहां सारा जीवन व्यतीत करना होता है
अगर उस दहलीज के अंदर
रहने वाले सभी प्राणी
मुहब्बत व इज्जत करने वाले और
बा-एहसास होते हैं, तो
यह दहलीज स्वर्ग से भी
सुंदर हो जाती है
नहीं तो, आजीवन कारावास!

आज के दौर में
कब प्रस्थान बिंदु बन जाए
कहा नहीं जा सकता!

बेटियां

लोग यूं ही नहीं कहते
घर का सुकून होती हैं बेटियां!

जब किसी दर्द से गुजरो
मलहम की तरह पेश आती हैं बेटियां
गलतफहमियां जब हो जाती है माँ-बाप के बीच
सेतु की तरह काम आतीं हैं बेटियां!

कभी बेटी बनकर तो कभी दोस्त बनकर
उनकी परेशानियों को सुलझाती हैं बेटियां
कभी मां बनकर उनकी गलतियों का
एहसास दिलाती हैं बेटियां!

घर का माहौल खुशगवार रहे, इसलिए
सबको प्यार की डोर में बांधे रहती हैं बेटियां
माँ-बाप को लगता है कि अभी वो छोटी हैं, पर
न जाने कब उनसे भी बड़ी हो जाती हैं बेटियां!

कभी अम्मा का संबल तो कभी पापा का अभिमान बन
जग में नाम रौशन करती हैं बेटियां
माँ-बाप के आँखों में देख लें थोड़े भी आंसू
दिल से तड़प उठती है बेटियां।

बदनसीब हैं वे लोग, जो मातम मनाते हैं
जब उनके घर पैदा होतीं हैं बेटियां
हर माँ-बाप के घर होनी हीं चाहिए बेटियां
क्योंकि हर मर्ज की दवा होती हैं बेटियां!

ऐ जिंदगी

ऐ जिंदगी! तू लुका-छिपी कर
तू हराने की कोशिश कर
मैं जीतने की कोशिश करती हूँ!

इस खेल में मैं जीतूं या हारूं
पर, तू न छोड़ना मेरा साथ
किसी पल अगर डगमगा जाए मेरे कदम
ऐ जिन्दगी! तू थाम लेना मेरा हाथ
जीतते-हारते चलेंगे हम दोनों साथ-साथ।

तुझसे, मुझे न कोई शिकवा है न शिकायत
गम हो या खुशी, तूने हर पल निभाया मेरा साथ
ऐ जिंदगी! तुझसे बड़ा कोई वफादार नहीं
पर, तुझे छोड़ना हो जब मेरा साथ
हँसकर कह देना अलविदा! अलविदा! अलविदा!

स्त्री

एक स्त्री पहले
आंटे की तरह गूंथी जाती है,
कहीं रह न जाए कठोर!
फिर गोल-गोल सांचों में ढ़ाली जाती हैं,
कहीं रह न जाए कोई विकृति!
तब बेल-बेल कर एक विस्तृत आकार पाती है,
कहीं रह न जाए संकुचित!
अब वो आग की ताप पर
उलट-पलट कर सेंकी जाती है,
कहीं रह न जाए जली-कच्ची!
पूरी तरह सिंक जाने के बाद
तब वो ग्रहण करती है,
रोटी सी परिपूर्णता!

-अलीगढ़, उत्तर प्रदेश (मो.: 7983406102)

कविताएं

धर्मपाल महेंद्र जैन

प्रवासी कवि और व्यंग्यकार हैं, जिनकी रचनाएं समाज और राजनीति पर तीखी पैनी नजर रखती हैं। उनके तीन कविता संकलन और सात व्यंग्य संग्रह हिंदी साहित्य में व्यंग्य और आधुनिक कविता की समृद्ध विरासत को आगे बढ़ाते हैं। उनकी लेखनी सामाजिक बुराइयों पर प्रभावी प्रहार करती है और पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है।

आततायी

तुम नया इतिहास लिखना चाहते थे
पर भूल गए कुछ जरूरी बातें
कब कौन आदमी बना
क्यों ठीक करने लगा
हवा, पानी, धरती
कानून, शिक्षा, समानता
अचानक किधर गया
कहाँ बेमौत मारा गया।
इतिहास तो कहता है
वह फिर-फिर लौटा
और हर बार मारा गया
आततायियों के शस्त्रों से।

महाभारत में नुकीली शैया पर लेटा भीष्म
नहीं देख पाया हजारों आदमी कटे-पड़े।
कलिंग लड़ता अशोक
द्रवित तो हुआ
लाशों से सजी धरती देख
पर वह बचा नहीं पाया आदमी।

आया चंगेज
आधी धरती का खून पीकर भी
नहीं बुझी उसकी प्यास।
उसके नाम लिखने की जिद में
तब भी मारा गया आदमी।

आदमी फिर भी उगा-बसा है
गली, मोहल्ले, चौराहे
मनुष्यता को बचाने में लगा।
आततायी, अंत में तुम्हें ही हारना होगा।

राजा

राजा युद्ध की बात करते हैं
युद्ध लड़ते नहीं अब, भेजते हैं
फौजी, टैंकें, मिसाइलें और आयुध
वे मोर्चे पर जाते नहीं अब।
राजा युद्ध में मरते नहीं अब।

राष्ट्रवाद पढ़ाते हैं राजा
भरते हैं जोश प्रजा में।
ताश के पत्तों की तरह
ढह जाते हैं फौजी खंदकों में
ध्वस्त टैंकों में सुलग जाते हैं सैनिक
सड़कों पर लाशें बिछती हैं प्रजा की
राजा शहीद नहीं होता अब।

राजा को नहीं लगती भूख-प्यास
कभी कम नहीं होती रसद महल में
बंकरों में छुपी जनता
सायरन की हर आवाज के साथ

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

आकाश में तलाशती है
ईश्वर, फूड पैकेट और पानी की बोतलें।

अलग-अलग ठिकानों के राजा
कोसते हैं पागल राजा को
कोई नहीं रुकवाता युद्ध
तबाह हो जाते हैं शहर
खंडहरों में बदलते-बदलते।
अपने लोगों के साथ धरती
खून के घूंट पीकर सुलगती रहती है
राजा नहीं होता द्रवित।
राजा, राजा रहता है बस।

बादशाह के नाम पर

बादशाह को डर है
किसी दिन छिनी जा सकती है
उसकी गद्दी
उसे अच्छा लगता है
नीली लौ का
पीली में बदलना।
वह आग लगाता है
शाम के धुंधलके में
जलता हुआ चमकता शहर
उसे दूर से रोशन लगता है।

घर खंडहर बन जाते हैं
हवा जल-जल कर धुआँ बन जाती है
पूल ध्वस्त हो जाते हैं
मिसाइलों से
भरने लगती है उथली नदी।

बादशाह के नाम पर
युद्ध इतिहास बन जाता है
और आदमी लाश।

निर्वसन

पेड़ ठूंठ से खड़े हैं
ठंडी हवा इतनी तीखी है
कि पत्तियां नहीं झेल पातीं
इनका दंश।

कल तक जो हरी-भरी
इतराती-मुस्कुराती टहनियां
गाया करती थीं हवा के साथ
अब उदास भीतर से कांपती सोई हैं
बर्फ की सफेद चादर ओढ़े।

तना तनकर खड़ा है
अपनी डालियों के लिए
इस उम्मीद में कि कल जब
समय करवट लेगा बसंत के साथ
नई कोपलें झांकने लगेंगी सूखी फुनगियों पर।
हरहारने लगेंगी डालियां
फिर सूरज सुस्ताने लगेगा उसके आँचल में।

पतझड़ जब भी आता है
निर्वसन कर जाता है
तब और भी मजबूत हो जाते हैं पेड़
फिर-फिर घने होने के लिए।

-22 **फैरल एवेन्यू, टोरंटो, कनाडा – फोन** 001 416 225 2415

कविताएं

मनीष कुमार वर्मा

मनोविज्ञान के प्रोफेसर हैं। शिक्षा, अनुसंधान और सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों पर गंभीर और संवेदनशील दृष्टिकोण रखते हैं। शायरी, निबंध और लघुकथाओं के माध्यम से जीवन की जटिलताओं, मनोवैज्ञानिक गहराइयों और सामाजिक चेतना का प्रभावी चित्रण करते हैं। इनका लेखन सरल, प्रेरणादायक और समाज में सकारात्मक बदलाव की उम्मीद जगाने वाला है।

जिंदगी तू है

जब भी मैंने समझना चाहा जिंदगी को
जिंदगी ने कहा मुझसे
तूने कभी समझा है खुद को
अगर तू समझ पाता
तो समझ लेता मुझको
जब भी किसी ने मुझे खोजना चाहा
तो उसने खो दिया खुद को
इसलिए खोज ले खुद को
और ये जान ले
जिंदगी तू है
जिंदगी तू है
सिर्फ तू है।

तुम्हारे साथ होता हूँ

कभी जब भीड़ से हटकर,
मैं तन्हा सा दिखता हूँ
मैं तन्हा नहीं होता,
तुम्हारे साथ होता हूँ।

तेरी खुशबू बसी है हर तरफ
अब इन हवाओं में

मैं चाहे हूँ कहीं भी,
बस तुम्हारे साथ होता हूँ।

जब कभी मैं
ऊँचाइयां छूने को बढ़ता हूँ
तेरा संबल मिलता मुझे,
मैं तुम्हारे साथ होता हूँ।

कभी जाना मुझे तुम छोड़कर
तो बतला के ही जाना
याद रहता नहीं कुछ भी
जब तुम्हारे साथ होता हूँ।

अब नहीं हो पास मेरे,
तब ये मैंने जाना है
कि हिस्सा बन गयी मेरा तुम,
और मैं तुम्हारे साथ होता हूँ

पाला

पालों में बटे लोग पालो में बटी जिंदगी
कोई भी संपूर्ण के बारे में नहीं सोचता
कि जो भी हो पूरा हो
या ना भी हो तो भी पूरा हो
सिर्फ अपने हिस्से की जिंदगी के बारे में सोचते हैं लोग
कभी तटस्थ रह के देखा है
दोनों पालों के लोग नोचकर खाने कि कोशिश करते है
लगता है चुनना ही पड़ेगा एक पाला
या तो अच्छा या बुरा
पूरा किसी को स्वीकार्य नहीं!

एहसास

कुछ पुरानी चीजों को
सजा देता हूँ अक्सर
जिन्हें कभी छुआ था अहिस्ता से तुमने
वो पत्तियां जो अब सूख चुकी हैं
वो सीप जो बिखरे थे किनारे पर
और प्यार से समेटे थे तुमने
वो कैमरा जो झूल जाता था तुम्हारे हाथों में
इन सबके साथ एक काफी
एक गर्म काफी
तुम्हारे होने का एहसास कराती है

रावण–दहन

आज वर्षों के बाद गया था रावण दहन देखने
दंभ से खड़े तीन पुतले
मेघनाथ, कुंभकर्ण और रावण
कुछ ही देर बाद बदल गए राख के ढेर में

हर साल हम इन्हें जलाते है
और फिर से खड़ा कर लेते हैं खुद में
अगले साल जलाने के लिए।

रिश्ते ना तो घसीटे जाते हैं,
और ना ढोए जाते हैं,
वह तो बस जिए जाते हैं!

– बृजेंद्र अग्निहोत्री

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविताएं

शैलेंद्र चौहान

समकालीन हिंदी रचनाकार हैं। वे अपनी रचनाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय मुद्दों को बारीकी से उजागर करते हैं। इनकी लेखनी में सरल भाषा के साथ गहरी सोच और भावनात्मक संवेदनशीलता देखने को मिलती है। इनकी कविताएं जीवन के विविध पहलुओं को समेटे हुए होते हैं और पाठकों को सोचने पर मजबूर करते हैं।

वह अभागा

एक लंबा-सा बांस
अपनी ऊँचाई से डेढ़ गुना
हाथ में पकड़े रोज गुजरता है घर के सामने से
नहीं जानता कौन है वह!

मैले-कुचौले कपड़े
दाढ़ी बढ़ी हुई
पैरों में फटे जूते
कंधे पर मोटा खेस
दिखता कुछ विक्षिप्त-सा
पर उसका कोई व्यवहार, गतिविधि नहीं असंयत
आँखों से सहज झलकती वीरानी, शून्य
उम्र होगी पचपन साठ के बीच
अभावों ने कर दिया जर्जर!

कौन है यह
क्या चौकीदार
पूछा मैंने एक दिन
क्या तुम चौकीदार हो
बोला वह 'हाँ' और निरपेक्ष भाव से बढ़ गया आगे
नहीं देखा मुड़कर

न बताया नाम
आगे कुछ नहीं बोला!

जानना चाहा आसपास के लोगों से
किसी ने बताया अर्धविक्षिप्त
किसी ने कहा- एक सेठ के घर के बाहर रात में देता है पहरा
मिल जाता है रात का खाना
उसमें से कुछ बचाकर खा लेता है सुबह
दिन में नाले के किनारे एक झुग्गी में सोता है।

कई बरसों से देख रहा हूँ उसे
इसी तरह आते-जाते
कभी नहीं मांगा कुछ भी उसने
यद्यपि हर बार मैंने जाननी चाही उसकी जरूरत
पर असफल रहा
एक दिन एक मिस्त्री ने बताया
पहले वह एक कारखाने में मजदूर था
कारखाना बंद हुआ
चला गया रोजगार
छत्तीसगढ़ या झारखंड कहीं से आया था
परिवार चला गया गाँव वापस
वह नहीं गया
करने लगा चौकीदारी।

कोरोना के समय हो गया बहिष्कृत दुनिया से
झुग्गियों का आश्रय
बिगड़ गया मानसिक संतुलन
फिर भी लगातार जाता रहा हर रात करने चौकीदारी
सेठ के घर के सामने बैठा रहता रात भर
सर्दी-गर्मी बरसात
सहज हुआ परिवेश कोरोना के उपरांत
जारी रहा उसका रूटीन

रात पहरेदारी दिन में झुग्गी की छांह
अपेक्षा नहीं किसी से कोई!

एक दिन देखा
उसे एक पोटली लिये फटे पुराने कपड़ों की
रख दी पार्क की बाउंडरी पर
पुराने जूते उठाए एक दिन
रख दिये थे मैंने घर के बाहर
धीरे-धीरे सिमट रहा था स्वाभिमान
दयनीयता और याचना दिखी उसकी आँखों में
नहीं कोई स्वप्न न आकांक्षा
मैंने दस रुपये का नोट पकड़ाया
ले लिया उसने!

फिर सजग हो गया वह
खत्म हुई दयनीयता
बीते डेढ़-दो वर्ष
विगत दो माह से नहीं दिख रहा वह
किसी को नहीं पता कहाँ गया वह
जीवित भी है या नहीं
चला गया अंततः वह
शायद नहीं लेना चाहता था किसी का कोई अहसान!

जीवन व्यापार

अक्सर देखता हूँ उस वृद्धा को गली के नुक्कड़ पर
प्रेस करने वाले की टपरी पर
सुबह जब घूमने निकलता हूँ तब प्रेस करने वाले की पत्नी
ला रही होती है घर से वृद्धा को थामकर
बिठा देती है उसे वहाँ रखी टूटी बैंच पर
बैठी रहती है वह दोपहर तक
कभी-कभी उठती है

कुछ कदम चलकर बैठ जाती है जमीन पर
कुरेदती है लकड़ी से मिट्टी
खेलती है मिट्टी से बच्चों की तरह
बुदबुदाती रहती है।

उसकी बहू इस बीच ले आती है घड़े में पानी
फिर चली जाती है कालोनी में झाड़ू-पोंछा करने
प्रेस के कपड़े लाने पहुंचाने
उसका पति पूरे समय करता रहता है प्रेस।

फुरसत के वक्त बहू बीनती है जूं वृद्धा के बालों से
वृद्धा अक्सर दिखती है शांत
पर कभी-कभी रोती है लगातार जोर-जोर से
बिसूरती है बोलती है दुख के बान
कलपती है बहुत
मन तो मन है
भर आता है दुख से किसी पल

समझाते हैं बेटे-बहू
बिठा देते हैं टपरी से दूर बाउंडरी के पास
रोती रहती है वह देर तक
नहीं रुकती जब
गुस्सा आ जाता बहू को
सब्र का बांध टूटता है
बाल पकड़ झिंझोड़ती है बुरी तरह
गिरा देती है है धक्का मार
लड़का हटाता है उसे माँ के पास से
सोचता हूँ जीवन का समयचक्र चलता है कुछ इसी तरह
नरम-गरम।

खयाल रखने वाला है कोई यह क्या कम है
भले ही झिंझोड़ डाले कभी-कभी

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

नहीं होता जिनके पास कोई
उन वृद्धों को जीना होता है कितना एकाकी
दुख उनका कहाँ समझता है कोई।

बहुत दिनों तक जब नहीं दिखती वृद्धा टपरी पर
आशंकित होता हूँ कि कहीं जीवनलीला
समाप्त तो नहीं हो गई उसकी
पूछता हूँ प्रेस वाले से
माँ नहीं दिख रही आजकल
वह बिना मेरी तरफ देखे निर्विकार भाव से
बता देता है कोई कारण
मैं आश्वस्त होता हूँ
जीवित है वह अभी
बढ़ जाता हूँ आगे।

सोन चंपा

हल्के सुनहले-श्वेत रुपहले फूल
भीनी- भीनी महक

एक दशक पहले रोपी थी एक टहनी क्यारी में
दो-एक वर्षों में हुई रूप यौवन गंध से पूर्ण
बहुत आनंदित था उसकी बाढ़ देखकर

हर वर्ष खिलते फूल और सुगंध फैलती द्वार पर
दशक बीता बन गया भरा पूरा वृक्ष
पतझर में बिखरते पात चहुंओर
घर बाहर पड़ोस
बहुत झरते हैं पत्ते, फूल कहते पड़ोसी
कचरा होता है अत्यधिक

जड़ें फैली बहुत
बाउंडरी में आ गई दरारें

सलाह दी पड़ोसियों ने
कटवाइये इसे अन्यथा ढह जायेगी बाउंडरी
गो उन्हें बाउंडरी की कम पत्तों के झरने की चिंता अधिक थी

चिंता बाजिब भी थी
टालता रहा कुछ दिन
छांटता रहा टहनियां
लेकिन जड़ें तो जम चुकी थीं
विस्तार पा रही थीं निरंतर
उपाय नहीं था रोकने का उन्हें
सिवाय काट देने के वह वृक्ष

नहीं मानता था मन
जड़ों में मट्ठा डालने बाबत सुना था बहुत
सोचा डालता हूँ मट्ठा
जड़ें बढ़ेंगी कम
संभव है सूख जाये वृक्ष
करता हूँ थोड़ा थोड़ा प्रयोग

वृक्ष हुआ और पल्लवित
खूब पत्ते झरे, फूल आए
लगा मट्ठे में पोषक तत्व हैं अधिक
कहावत सीमित अनुभवों से बनी है
सोन चंपा में मट्ठे से पोषण की क्षमता है
बिलकुल सांप्रदायिक शक्तियों की तरह
कोई असर नहीं यूरिया और हाइड्रोक्लोरिक एसिड का भी

फल फूल रही हैं वे सतत, भरपूर
बावजूद समझने-समझाने के
लगता है पोषक तत्वों से भरा हुआ है
पूरा परिवेश
नाकामयाब हो रही हैं सब तजबीजें

नहीं है मरीचिका कोई

शरीर पस्त है
आगे नहीं बढ़ा जाता
इस रेगिस्तान में अमिट मरीचिका!
नहीं! आगे नहीं बढ़ूंगा
भ्रम नहीं है अब कोई
खेजड़ी का पेड़ मेरी जीवनरेखा है।

ये जो नन्हा पौधा है
यही भविष्य का स्वप्न है
इसे सींचूंगा ओस की बूंदों से
रोपूंगा कुछ और पौधे
खोजूंगा वनस्पतियां
जुटाऊंगा बीज पौधों के।

टाँके में भरा पानी ढंकने के लिए खोजना है
कोई शिला, खेजड़ी की टहनियां, आक के पत्ते और मिट्टी
गढ्ढा गहरा करना है
वाष्पित होने से रोकना है
करना है बादलों का इंतजार
बनाना है एक झूपा
बच सकूं ताप और ठंडी हवाओं से।

हवाओं का रुख और गति समझना है
सुनना है इनका संगीत
डूबना है इन स्वर लहरियों में
रोहिड़े में फूल के खिलने पर
बेतहाशा खुश होना है
अब यहीं रुकना है मुझे
यही है मेरा गंतव्य

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

अगर कोई भटकता हुआ मनुष्य
आयेगा यहां तो उसे मैं
ठहराऊंगा झूपे में
खाने को दूंगा रेत में उगा शाक
पीने को दूंगा टांके में संरक्षित पानी
सुनाऊंगा उसे सूनेपन का संगीत
और मरीचिका का सच
जो समझा हूँ मैं इस जीवन-प्रवास में।

तृष्णा

मेरे सीने में एक प्लेटफार्म जम गया है
खड़खड़ाती हुई इक्का- दुक्का रेलगाड़ी से
नीरवता कुछ देर के लिए खत्म होती है
कुछ पाँव हौले धीरे
मेरे सीने को चीरते हुए गुजर जाते हैं

गूंजती हुई सीटी अपने आप में एक तूफान समेट ले जाती है
बचा रहता है फिर वही सूनापन
तीन चौथाई मील दूर से आते किसी यात्री की प्रतीक्षा

काश! यहाँ से होकर कोई और रास्ता भी गुजरता
किसी पाँव चलते यात्री की थापें या पदचाप
मिटा सकते
एक अंतहीन यात्रा की लालसा।

–34/242, सेक्टर-3, प्रतापनगर, जयपुर–302033

मैं छुपाना जानता तो, जग मुझे साधु समझता!
शत्रु मेरा बन गया है, छल रहित व्यवहार मेरा!!

**हरिवंश राय 'बच्चन'*

गजलें

केशव शरण

समकालीन हिंदी गजल के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनकी रचनाओं में पारंपरिक गजल के शिल्प और आधुनिक संवेदनाओं का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। गंगा-जमुनावी तहजीब और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने इनके लेखन को एक विशिष्ट पहचान दी है। इनकी गजलों में भाषा की सहजता, भावों की गहराई और समाज के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से झलकते हैं। हिंदी गजल को नए आयाम देने में उनका योगदान उल्लेखनीय है। ये उन रचनाकारों में शामिल हैं जिन्होंने गजल को सिर्फ मनोरंजन या प्रेमाभिव्यक्ति का माध्यम न बनाकर, उसे सामाजिक चेतना और वैचारिक अभिव्यक्ति का सशक्त मंच बनाया है।

तुम्हारा चाहता ही दिल कहाँ है।
मिलन में अन्यथा मुश्किल कहाँ है।।

कहाँ हैं दोस्त अपने मौज करते
लगा मेला सजी महफिल कहाँ है।

करे पूरी हमारी जिंदगी जो
हमारा हुस्नगर कातिल कहाँ है।

हमारे बीच था वो अनमना-सा
अभी किनसे गया घुल-मिल कहाँ है।

हजारों गुल दिखाई दे रहे हैं
मगर गुल एक भी खुशखिल कहाँ है।

इसे सब तोड़ने वाले रहे हैं
कि दिल ये प्यार के काबिल कहाँ है।

मुहब्बत का मुसाफिर सोचता है
कहाँ है वो खड़ा मंजिल कहाँ है।

लिए कुछ और मुस्तकबिल कहाँ है।
किया था जो कभी हासिल कहाँ है।।

हमारा मालिकाना जब्त होगा
वहाँ खारिज यहाँ दाखिल कहाँ है।

कहाँ अब दिल लगाने का जमाना
हमारा लग रहा भी दिल कहाँ है।

मुसाफिर है अजब गर पूछिए तो
बता पाता नहीं मंजिल कहाँ है।

समुन्दर में कहाँ हम आ गए हैं
जजीरा है कहाँ साहिल कहाँ है।

अकेली जिंदगी ये और यादें
कहाँ तू है नहीं, शामिल कहाँ है।

तुझे दिलदार काबिल दूँ कहाँ से
कि जो दिलदार वो काबिल कहाँ है।

तमस में जब रहे बिन चाँदनी हम।
अकेले काट लेंगे उम्र भी हम।।

अधिक डर, कम शयन, आहार, मैथुन
गुजारे जा रहे हैं जिंदगी हम।

कभी कहते नहीं तुम बेवफा हो
समझते हैं सभी की बेबसी हम।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

नहीं मालूम था तुम उड़ चलोगी
तुम्हें कहते रहे नभ की परी हम।

धरे जाते रहे आरोप हम पर
ठगे जाते रहे हैं निश्छली हम।

दिया था दिल जिसे वो दूर करता
न सहते तब मुहब्बत की कमी हम।

तुम्हें हैं याद मानव-श्रृंखलाएँ
कभी होते रहे उनकी कड़ी हम।

सितम से मरे या खुशी से जिए भी।
बहुत हो गया दास को छोड़िए भी।।

बगावत न हो कीजिए जुल्म कम कुछ
यही ठीक है सल्तनत के लिए भी।

घृणा के समय में इधर से, उधर से
पहल प्यार की हो रही, चाहिए भी।

बड़े पृष्ठ थे पर पड़े कम कलम को
बड़े काम आए उसे हाशिए भी।

बड़े भाग्य वाले न होते सभी हैं
चला आ रहा धन बिना कुछ किए भी।

जहाँ हो अँधेरा चलो हम जलाएँ
बहुत चाहते हैं हमारे दिए भी।

मिला यार मयकश बड़े वक्त से है
बहुत रोज हमको हुए मय पिए भी।

–एस 2/631-3 के के, कुंज विहार कॉलोनी, सिकरौल, वाराणसी 221002

गजलें

नवीन माथुर पंचोली

हिंदी गजल के समकालीन कवि हैं, जो अपनी भावपूर्ण और मार्मिक गजलों के लिए जाने जाते हैं। मध्यप्रदेश के अमझेरा क्षेत्र की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने इनके लेखन को विशिष्टता दी है। इनकी गजलों में मानवीय संवेदनाएँ, जीवन के अनुभव और सामाजिक यथार्थ बखूबी प्रतिबिंबित होते हैं। वे पारंपरिक गजल के फार्म को बनाए रखते हुए उसमें नये विषयों और विचारों को समाहित करते हैं।

खुद को जब ऊँचाई देगा।
तब ही वो दिखलाई देगा।।

फिर मिल जाएगा चुप को घर,
जब दिल को तन्हाई देगा।

मुन्सिफ जब गूंगे-बहरे हैं,
कितनी और दुहाई देगा।

मतलब रक्खी बातों में अब,
तर कितनी चिकनाई देगा।

असली-नकली पहचाने बिन,
किन- किन को भरपाई देगा।

लय, सुर,ताल सधे होंगे जो,
हाथों में शहनाई देगा।

मिलकर उनकी रानाई से,
बदले में शैदाई देगा।

अपनी एक कहानी फिर से।
बातें और जबानी फिर से।।

भूली बिसरी दिल तक आई,
यादें आज पुरानी फिर से।

बदली जबसे चाल समय ने,
मचली जोश-जवानी फिर से।

तेज हवा से पर टकराये,
जागी और रवानी फिर से।

भूल चुके थे जिसको पहले,
लौटी वो नादानी फिर से।

पूछते हो कि हाल कैसा है।
आपका ये सवाल कैसा है।।

सिलसिला है सभी रिवाजों का,
आज उनपर बवाल कैसा है।

आपका ही किया-धरा तो फिर,
आपको ही मलाल कैसा है।

शर्म दिखती नहीं है चेहरे पर,
गाल पर फिर गुलाल कैसा है।

काम सबका अगर बराबर तो,
आपका फिर कमाल कैसा है।

आप ही जो नहीं जता पाए,
आपका ये ख्याल कैसा है।

हसरतें लोग पालते बहुत हैं।
साथ जिनके मुगालते बहुत हैं।।

आमने- सामने आकर भी वो,
रास्ते अपने टालते बहुत हैं।

साथ बदनामियाँ नहीं लेकिन,
लोग मुद्दे उछालते बहुत है।

हम जिन्हें भूलते रहे अक्सर,
फलसफे उनके सालते बहुत हैं।

जानते हैं जिन्हें जितना बेहतर,
गल्तियाँ वो निकालते बहुत हैं।

ऐसी रीत चलाकर आ।
सबको मीत बनाकर आ।।

बहलाये जो मन सबका,
ऐसा गीत सुनाकर आ।

राह मिले जब अंधियारी,
उस पर दीप जलाकर आ।

बाँटे दुःख-सुख आपस में,
सबके भाव जगाकर आ।

हो अपना वैसा सबका,
ये सबको समझाकर आ।

आदर - भाव रहे जिसमें,
वो तहजीब सिखाकर आ।

गजलें

प्रवीण पारीक 'अंशु'

इनकी गजलों में पारंपरिक शिल्प के साथ आधुनिक सोच और भावनाओं का समावेश मिलता है। वे हिंदी गजल को सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय दृष्टिकोण से समृद्ध करते हैं। इनकी लेखनी में सरल भाषा और गहरे भावों का मेल है, जो पाठकों को सीधे हृदय से जोड़ता है।

दोस्ती, रिश्ते, वफा कुछ भी नहीं।
सिर्फ लफ्जों के सिवा कुछ भी नहीं।।

मर चुकी संवेदनाएँ जब सभी
आदमी में क्या बचा? कुछ भी नहीं।

जिन्दगी हर रोज कहती है मुझे
'आज हूँ, कल का पता कुछ भी नहीं!'

आप सूरज हैं, चलो माना, मगर
रोशनी दीये की क्या कुछ भी नहीं ?

लोग सूली पर चढ़ाते सत्य को
झूठ की लेकिन, सजा कुछ भी नहीं।

वो भला, इंसान को समझेगा क्या
जिनकी नजरों में खुदा, कुछ भी नहीं।

हाँ, हुनर की अहमियत भी है बहुत
किंतु मेहनत से बड़ा कुछ भी नहीं।

आँसुओं के चंद कतरे छोड़कर
जिन्दगी से क्या मिला, कुछ भी नहीं।

झेलता तूफान की हर एक मुश्किल खुद ब खुद
जल रहा है इक अकेला दीप झिलमिल खुद ब खुद।

इक अकेले चलने का है हौसला जिनमें नहीं
भीड़ में हो जाते हैं वो लोग शामिल खुद ब खुद।

छोड़ दें जब सोचना हम कुछ समय के ही लिए
हो चले आसान यूँ हर एक मुश्किल खुद ब खुद।

इतनी शिद्दत से चला था जानिबे मंजिल, कि अब
देखिए तो, आ गई है चल के मंजिल खुद ब खुद।

मयकदा से लौटकर देखा जो उसने आइना
आ गया था सामने उसका ही कातिल खुद ब खुद।

थामकर पतवार लड़ना पड़ता है तूफान से
चलके कश्ती तक कहाँ आता है साहिल खुद ब खुद।

लोग थे मौजूद सारे, फिर भी थी महफिल उदास
तेरे आने से हुई रंगीन महफिल खुद ब खुद।

न्याय के पथ पर चलूँ तो साहस इतना भर रहे।
ईश्वर को छोड़कर ना दूसरे का डर रहे।।

क्यूँ बने शैतान कोई, क्यूँ बने भगवान भी
आदमी है आदमी तो आदमी बनकर रहे।

कामयाबी का अगर पूछो तो नुस्खा है यही
आसमां में हो नजर और पाँव धरती पर रहे।

मुश्किलें, दुश्वारियां, बेचैनियां, तन्हाइयां
जिन्दगी जीने की खातिर लोग हर पल मर रहे।

आस्था से सिर झुका तो हो गए हैं देवता
भूल जाते हैं यहाँ वो भी कभी पत्थर रहे।

तराने मुहब्बत के गाने चला है।
दुबारा ये दिल मात खाने चला है।।

अभी ठीक से तो न संभला मेरा दिल
नये ख्वाब फिर से सजाने चला है।

कोई बैठकर मेरी पलकों के भीतर
मेरे ख्वाब सारे चुराने चला है।

कसम जब से खाई है हँसने की मैंने
मुझे गम मेरा आजमाने चला है।

जरा-सी जमीं के लिए उसका भाई
उसे रास्ते से हटाने चला है।

मेरे दर्द उसको लगे अपने जैसे
गजल जो मेरी गुनगुनाने चला है

यकीं अब करे तो करे 'अंशु' किस पर
मुझे अपना मांझी डुबाने चला है।

-राम कृपा कुंज, नजदीक सेतिया पैलेस, बाईपास रोड़,
ऐलनाबाद, सिरसा (हरियाणा) 125102

कैलाश मनहर

समकालीन हिंदी गजल के एक सशक्त और सजग स्वर हैं। इनकी रचनाओं में समाज की विडंबनाएँ, मानवीय संघर्ष और संवेदना गहराई से उभरती हैं। वे बेहद सहज भाषा में गंभीर विषयों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इनकी रचनाएं पाठकों को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करती हैं।

मुझे बरबाद करना चाहते हैं।
वे मुझसे प्यार करना चाहते हैं।।

मुझे ही मार देंगे देखना तुम
जो मुझ पे आज मरना चाहते हैं।

मैं अपने रास्ते पर चल न पाऊँ
वे काँटे बन बिखरना चाहते हैं।

मुझे राहों से भटकाने की खातिर
वे हर हद से गुजरना चाहते हैं।

वे खुद को खूबसूरत मानते हैं
तो फिर भी क्यों संवरना चाहते हैं।

वे जिस डर में हमेशा जी रहे हैं
वही डर मुझ में भरना चाहते हैं।

मैं मनहर हूँ उन्हें मालूम तो है
जो मेरे मन को हरना चाहते हैं ।

सवालों जवाबों में उलझा हुआ हूँ।
नतीजा भी कुछ-कुछ समझने लगा हूँ।।

यही है क्या मेरे ख़्यालों की दुनिया
कहाँ से चला था, कहाँ आ गया हूँ।

बियाबान जंगल, अंधेरों के मंजर
उन्हें रोशनी का पता पूछता हूँ।

मिला था जहाँ आखिरी बार तुम से
वहीं जिन्दगी के निशाँ ढूंढ़ता हूँ।

मैं सूखी नदी के किनारे खड़ा हूँ
यहाँ पानियों की सदा सुन रहा हूँ।

हूँ खुद ही आज और खुद ही कल रहा हूँ मैं।
इस वक्त को काँधे पे लिये चल रहा हूँ मैं।।

धोखा कभी पाखण्ड या साजिश हरेक दिन
छलता है कोई या कि खुद को छल रहा हूँ मैं।

हर बात समझता हूँ फिर भी हूँ मैं बेवकूफ
दुनिया की निगाहों में ज्यों पागल रहा हूँ मैं।

गम से मेरा रिश्ता है सदा से बहुत अजीज
दिल से मरुस्थल आँखों से बादल रहा हूँ मैं।

अक्सर सवाल करता हूँ मैं सल्तनत से तो
नजरों में हर किसी की बहुत खल रहा हूँ मैं।

चलता हूँ लड़खड़ाता हूँ अनजान राह पर
गिरने से पहले खुद ही तो सम्भल रहा हूँ मैं।

गजल

सुधा राजे

इनकी रचनाएं सरल भाषा में जीवन के अनुभवों, सामाजिक मुद्दों और महिलाओं की भावनाओं को सुंदरता से अभिव्यक्त करती हैं। वे हिंदी कविता में सक्रिय हैं इनका साहित्य संवेदनशीलता और जनसम्बंधता का परिचायक है।

बच्चे ज्यों ज्यों हुये सयाने, चीर पुराने अम्मा के।
खेत हुये बेटों के बस ,कुछ पानी दाने अम्मा के।।

सबसे सुंदर कमरे में, माँ बहू बनी दर्पण तकती
बड़ी बहू के आते छिन गये ठौर ठिकाने अम्मा के।

पूछ - पूछ कर अम्मा से, बाबूजी ईंटें चिनवाते
आँगन में दीवार उठी तो, लुटे खजाने अम्मा के।

पोता पोती ब्याज बता, नाची थी लड्डू बंटवा कर
बच्चे फुसलाती है बुढ़िया, ब्याज बेगाने अम्मा के।

हुलस सिखाती थीं पकवान बनाना बेटी बहुओं को
दीवाली होली पर गिन-गिन, चार मखाने अम्मा के।

तुलसी मंदिर द्वार लीपते, अम्मा बच्चे पीठ रखे
काम बहुत है क्या-क्या देखें, पुत्र बहाने अम्मा के।

नई फिल्म जब लगती अम्मा, हाँक मुहल्ला ले जाती
बुढ़िया है रंगीन देखती टीवी ताने अम्माँ के।

बच्चों को सर्दी लगते माँ, रातों जागी व्रत रख्खे
था दवाई के बिल पर झगड़ा, नैन विराने अम्मा के।

अम्मा को था चाव महावर, नाखूनी मेंहदी रोली
बाँटे जेवर झगड़ के रीते, बदन सुखाने अम्मा के।

बाबू जी ने सब कलंक, अम्मा की ममता पर थोपे
चीख दबोचे रोए रात भर, दुःख पैताने अम्मा के।

कौन करे बुढ़िया की सेवा, घर में ये भी बहस रही
सबकी मालिश करके पाला, पांव पिराने अम्मा के।

सबके साथ ठसक कर बैठीं, खातीं थीं बतियातीं थी
'सुधा' हिलक कर रोयी थाल, कोठरिया खाने अम्मा के।

अम्मा के मरते ही कमरा, पक्का होकर फर्श पड़ा
सजधज तेरहवीं की गंगा, हाड़ सिराने अम्मा के।

हिलक हिलक कर छोटा रोया, सबसे पहले था न्यारा
मंझले ने तस्वीर टांग ली, बड़े बखाने अम्मा के।

टपक रही खपरैल रसोई, खाजर के नीचे सोतीं
कथरी खुद ही सिली, पुरानी धोती बाने अम्मा के।

मरने के पहले तक बिंजना, बुनती सिलती झबलों को
मरने तक कई साल न बिटिया, आईं बुलाने अम्मा को।

मर गयीं तो भी चैन कहां, हर चीज गिनी बांटी सबने
बस बिसरा दयी बहिन भानजी, हक ना माने अम्मा के।

भूखी प्यासी पीर पिये गयीं, किंतु न मांगा पानी भी
स्वाभिमान के त्याग तपोबल, किसने जाने अम्मा के।

'सुधा' परी सी, सिंह सरीखी, अम्मा दीन दुखी मर गयी
वीराने वे गाँव गली सब, पते भुलाने अम्मा के।

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कृति–चर्चा

'चित्रलेखा' में जीवन दर्शन

• सुनीता जाजोदिया

चित्रलेखा भगवती चरण वर्मा द्वारा रचित एक दार्शनिक उपन्यास है, जो पाप-पुण्य, धर्म, स्त्री-पुरुष संबंध और जीवन के नैतिक द्वंद्वों की गहन पड़ताल करता है। उपन्यास की मूल कथा एक शिष्य श्वेतांक के प्रश्न 'पाप क्या है?' से प्रारंभ होती है। उत्तर की खोज में दो शिष्यों को दो मार्गों- वैराग्य और भोग- पर भेजा जाता है। योगी कुमारगिरि और भोगी बीजगुप्त के जीवन के माध्यम से दोनों शिष्य जीवन के गूढ़ अनुभव प्राप्त करते हैं। सुंदरी और विदुषी चित्रलेखा का पात्र स्त्री की सामाजिक छवि को चुनौती देता है और उसे शक्ति तथा सृष्टि का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत करता है। अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि पाप कोई स्थायी सत्य नहीं, बल्कि दृष्टिकोण की विषमता है।

मानव मन में विचारों की एक निरंतर लहर उठती रहती है- अविराम, अनवरत। जीवन क्या है? मनुष्य का कर्म पर कितना अधिकार है? सही क्या है और गलत क्या? पाप और पुण्य की अवधारणाएं क्या हैं और हम इन्हें क्यों भोगते हैं? सौंदर्य का स्वरूप क्या है? समाज के नियम, नैतिक मूल्य, परंपराएं और संस्कार- इन समस्त तत्वों को लेकर मनुष्य का अंतर्मन निरंतर द्वंद्व में उलझा रहता है। जब इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता, तब उसका मन उद्वेलित हो उठता है। यही द्वंद्व चित्रलेखा उपन्यास की रचना का प्रेरक तत्व बनता है। लेखक भगवती चरण वर्मा स्वयं स्वीकार करते हैं- ''पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है, पर सदा असफल रहा हूँ। पाप क्या है और उसका निवास कहाँ है, यह एक बड़ी कठिन समस्या है, जिसे आज तक नहीं सुलझा सका हूँ।'' (पृष्ठ 7)

यह स्वीकारोक्ति न केवल लेखक की ईमानदार जिज्ञासा को दर्शाती है, अपितु उपन्यास के केंद्रीय प्रश्न की भी नींव रखती है- 'पाप क्या है?' महाप्रभु रत्नांबर के शिष्य श्वेतांक द्वारा किया गया यह प्रश्न, और उसके उत्तर की खोज ही उपन्यास की कथा यात्रा है, जो उपसंहार में इस निष्कर्ष तक पहुँचती है- ''संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का

दूसरा नाम है... कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार वह कार्य नहीं करेगा जिसमें दुख मिलेय यही मनुष्य की मनःप्रवृत्ति है और यही उसकी दृष्टिकोण की विषमता है।'' (पृष्ठ 136)

इस गूढ़ सत्य की प्राप्ति के लिए श्वेतांक और विशालदेव, दो शिष्य, गुरु के आदेश पर भिन्न जीवन पथों को अपनाते हैं। विशालदेव योगी कुमारगिरि का शिष्य बनकर तप और ध्यान के मार्ग पर अग्रसर होता है, वहीं श्वेतांक भोगी बीजगुप्त का सेवक बनकर सांसारिक जीवन का अनुभव प्राप्त करता है। एक वर्ष तक दोनों शिष्य जीवन के दो विपरीत धाराओं- वैराग्य और भोग- में प्रवाहित होते हुए उस सत्य की खोज करते हैं, जो पाप और पुण्य की वास्तविकता को उद्घाटित कर सके। उपन्यास में चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि जैसे जीवंत पात्रों के माध्यम से लेखक ने पाप को देखने, समझने और आत्मसात करने के अवसरों का सृजन किया है। अंततः दोनों शिष्यों के एक ही पात्र के प्रति भिन्न दृष्टिकोण उनके अंतद्वंद्व का समाधान प्रस्तुत करते हैं, जब महाप्रभु रत्नांबर कहते हैं- ''मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है, कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा?'' (पृ. 136)

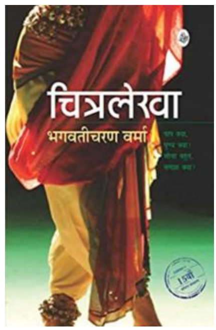

संस्करणः 2009
मूल्यः 299/-
राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली

चित्रलेखा एक ऐसा उपन्यास है, जो अपने आरंभ से लेकर समापन तक पाप की उत्पत्ति, प्रवृत्ति, प्रयोजन और परिणाम की निरंतर पड़ताल करता है। इसमें स्त्री-पुरुष संबंधों, विवाह की सामाजिक स्वीकृति, पतिव्रता और विधवा स्त्री के मनोभावों की व्याख्या अत्यंत सहजता से की गई है। उपन्यास की नायिका चित्रलेखा, जो पाटलिपुत्र की अपूर्व सुंदरी और विदुषी है, एक सशक्त नारी के रूप में प्रस्तुत होती है। शास्त्रों द्वारा स्त्री को 'माया', 'छलना', 'पाप का मूल' और 'अंधकार' बताने की परंपरागत धारणा को वह खंडित करते हुए कुमारगिरि से कहती है- ''और रही स्त्री के अंधकार तथा माया होने की बात, योगी, वहाँ भी तुम भूलते हो। स्त्री शक्ति है, वह सृष्टि हैकृयदि उसे संचालित करने वाला व्यक्ति योग्य है। वह विनाश हैकृयदि उसे संचालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य या कायर है।'' (पृष्ठ 39)

चित्रलेखा स्वतंत्र, स्वाभिमानी, साहसी और संवेदनशील स्त्री का प्रतीक है, जो हृदय से प्रेम करती है और जीवन के कीचड़ में कमल के समान निर्मल और पवित्र बनी रहती है। लगभग एक शताब्दी पूर्व रचित इस उपन्यास में लेखक ने स्त्री पर लगाए जाने वाले सामाजिक लांछनों का खंडन करते हुए नारी के पतन के लिए पुरुष को भी उत्तरदायी ठहराया है। इस प्रकार वे स्त्री-विमर्श को समता के धरातल पर प्रस्तुत करते हैं। वर्मा जी अनुराग और विराग, ईश्वरानुरक्ति और भोग, प्राकृतिक और कृत्रिम, सौंदर्य और कुरूपता जैसे जीवन के अनेक विरोधाभासों की मीमांसा करते हैं और उनके मध्य संतुलन की स्थिति की ओर संकेत करते हैं। सौंदर्य की क्षणिकता और उसकी सार्थकता पर बीजगुप्त का यह कथन दृष्टव्य है- ''ये पुष्प कोमल हैं? ठीक है, पर इनमें काँटे भी तो हैं। न जाने कितने छोटे-मोटे भुनगे इन फूलों के अंदर घुसे हुए हैं। रही इनकी कोमलता और इनकी सुगंध- ये क्षणिक हैं। फिर इनकी सुगंध किस काम की? एकांत में ये अपना सौरभ व्यर्थ गंवा देते हैं।'' (पृष्ठ 93)

उपन्यास की पृष्ठभूमि पाटलिपुत्र है, और कालखण्ड गौतम बुद्ध के समय का। ऐसे में बौद्ध विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होना स्वाभाविक है। यज्ञ में बलिप्रथा को लेकर मृत्युंजय का यह कथन वर्मा जी की बौद्ध-संवेदना का साक्षी है- ''...इतने रक्तपात से लाभ! यह रक्तपात धर्म में ग्लानि ही पैदा करता है। जो कुछ बुद्ध ने कहा, उसमें तथ्य अवश्य है।'' (पृष्ठ 109)

धर्म हिंसा के लिए नहीं, वरन् मन की शांति के लिए होना चाहिए। यदि धर्म रक्तपात की ओर ले जाए, तो ऐसे सड़े-गले अंशों को त्याग देना ही मानवता के हित में है। चित्रलेखा न केवल पाप-पुण्य की अवधारणा पर पुनर्विचार करती है, बल्कि मानव अस्तित्व, प्रेम, आत्मा, विवाह, समाज, प्रकृति और सौंदर्य जैसे जीवन के विविध पक्षों पर गहन विमर्श प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि यह कृति सार्वभौमिक और कालजयी बन जाती है। जब तक मनुष्य और उसकी चेतना विद्यमान रहेगी, तब तक यह उपन्यास अपनी प्रासंगिकता बनाए रखेगा। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि लेखक अपने विचारों को अंतिम सत्य के रूप में नहीं थोपता। वह पाठक को सोचने, प्रश्न करने और स्वयं अपने निष्कर्ष तक पहुँचने की स्वतंत्रता देता है। अनेकांतवाद की इस भावना के साथ उपन्यास का समापन लेखक के इस उदार वाक्य से होता है- ''यह मेरा मत है। तुम लोग इससे सहमत हो या न हो, मैं तुम्हें बाध्य नहीं करता और न कर सकता हूँ। जाओ और सुखी रहो।'' (पृष्ठ 136)

-एसोसिएट प्रोफेसर एवं भाषा विभागाध्यक्ष, विमेंस क्रिश्चियन कॉलेज, शिफ्ट 2, चेन्नै

कृति–चर्चा

प्रेम के साये में जिंदगी

• कृष्ण कुमार पासवान

'प्रेम कहानी' ममता कालिया का उपन्यास है जिसमें जया नाम की एक युवती की प्रेम, उत्पीड़न और जीवन संघर्ष की कहानी है। पारिवारिक दबाव और यौन-उत्पीड़न से उपजी पीड़ा के बीच जया दिल्ली के कहलेज में पढ़ाई करती है, जहां उसकी मुलाकात गिनेश से होती है। वे प्रेम में पड़ते हैं, विवाह करते हैं, पर शादीशुदा जीवन में जया घरेलू जिम्मेदारियों और पति की उपेक्षा में टूटती है। उपन्यास स्त्री की प्रेम और स्वतंत्रता की आकांक्षा, सामाजिक मर्यादाओं, और यथार्थ की जटिलताओं को उद्घाटित करता है। यह उपन्यास नारी विमर्श, सामाजिक संरचना, धर्म और दर्शन की दृष्टि से अत्यंत विचारोत्तेजक और कालजयी रचना है।

प्रेम और जीवन- दो ऐसे शब्द हैं जो सदियों से एक-दूसरे को परिभाषित करने के उपक्रम में संलग्न हैं। आध्यात्मिकता से परे, इस भौतिकतावादी युग में प्रेम के बिना जीवन निष्प्राण है और जीवन के बिना प्रेम भी निरर्थक। ये दोनों भाव मानवीय अस्तित्व के दो ध्रुव हैं, जो समय के साथ परस्पर व्याख्यायित होते रहे हैं। मानव सभ्यता के इतिहास में जब-जब किसी कथा का जन्म हुआ, जीवन के रंगों के साथ-साथ प्रेम की आभा उसमें घुली रही। हर बार प्रेम को नई चेतना के साथ पुनः कहा गया। लोककथाओं, दंतकथाओं और पौराणिक आख्यानों में प्रेम को ही सबसे अधिक जीवंत किया गया। समय की सीढ़ियां चढ़ती हुई मानव सभ्यता आज भूगोल और इतिहास के पार जाकर उत्तर-आधुनिक युग के द्वार पर खड़ी है। जीवन के अर्थ परिवर्तित हो रहे हैं, परंतु स्त्री-पुरुष के मध्य प्रेम की अनुभूति अब भी उसी आदिम स्पर्श की चाहत करती है, उसी शाश्वत बोध से जीवन की अजस्र धारा को प्रवाहित करना चाहती है। किंतु क्या आज भी प्रेम का पर्याय राधा-कृष्ण, लैला-मजनू, हीर-रांझा, या रोमियो-जूलियट हैं? वैश्वीकरण और 'रेस्टलेस लाइफ' की आपाधापी में क्या प्रेम को एक नई परिभाषा की आवश्यकता नहीं है? क्या प्रेम, सामाजिक मर्यादाओं की सीमाओं में बंधा हुआ अनुभव है या इनसे परे कोई मुक्त उद्गार? इन्हीं प्रश्नों के बहुस्तरीय उत्तर

ममता कालिया अपने उपन्यास 'प्रेम कहानी' (1980) में देने का प्रयास करती हैं। हिंदी साहित्य के आठवें दशक में स्त्री लेखन ने जिस तरह से मध्यवर्गीय चेतना में हस्तक्षेप किया, वह उल्लेखनीय है। इस दौर में कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, शिवानी और ममता कालिया जैसी लेखिकाओं ने स्त्री के मूक दर्द और गूंगी पीड़ा को स्वर दिया। पहली बार स्त्रीत्व की अनुभूतियां मात्र कोमल भावनाओं तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि वे यथार्थ के तीखे थपेड़ों की प्रतिध्वनि बनकर उभरीं। प्रेम, जो अब तक मोक्ष का मार्ग था, वही स्त्री की आत्मा पर सबसे गहरा आघात करता दिखाई दिया।

ममता कालिया सहित अनेक लेखिकाओं ने प्रेम के इस दंश को अपने लेखन में सजीव किया। उन्होंने दिखाया कि कैसे प्रेम, एक ओर कोमल भावनाओं का उद्दीपन करता है, तो दूसरी ओर वासना के विषैले स्पर्श में स्त्री की अस्मिता को निगल जाता है। स्त्रियाँ अपने प्रेम को समर्पण और समझौते का दूसरा नाम मान चुकी थीं। इन दो ध्रुवों, उत्सर्ग और दमन, के मध्य पिसती स्त्री की करुण कथा को इन लेखिकाओं ने अत्यंत संजीदगी से अभिव्यक्त किया है। 'प्रेम कहानी' ममता कालिया का अपेक्षाकृत कम चर्चित किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। शिल्प की दृष्टि से यह एक लंबी कहानी का स्वरूप लिए हुए है। ममता कालिया का पहला उपन्यास 'बेघर' पाठकों में विशेष चर्चित रहा, जबकि 'नरक दर नरक', 'दौड़', 'लड़कियां', 'एक पत्नी के नोट्स' तथा 'दुक्खम्-सुक्खम्' आदि ने स्त्री जीवन के विविध आयामों को उकेरा। 'प्रेम कहानी' भी इसी परंपरा की एक कड़ी है, जो प्रेम की अनुभूति को जीवन की क्रमबद्धता के साथ गूंथती है।

उपन्यास का कथानक सरल किंतु प्रभावशाली है। मथुरा के दो रूढ़िवादी परिवारों की बेटियां- जया और यशस्विनी, दिल्ली के आई.पी. कॉलेज में अध्ययनरत हैं। दिल्ली, जो हजारों सपनों की नगरी है, यहाँ ये दोनों लड़कियाँ प्रेम की आकुलता से अपने को सराबोर करना चाहती हैं। उपन्यास की नायिका जया, बी.ए. की पढ़ाई अपने रिश्तेदारों के घर रहकर करती है, जबकि यशस्विनी हॉस्टल में रहती है। यहीं उसे यशस्विनी की एक सहेली का भाई, शिकागो निवासी मोहम्मद, प्रेम-पत्रों के माध्यम से प्रेम का पहला पाठ पढ़ाता है। ममता कालिया इस प्रथम प्रेम-स्पर्श को अत्यंत संवेदनशीलता से व्यक्त करती हैं- ''जीवन में पहली बार किसी के प्रेम पत्र को हाथ लगाया था। उसे छूने मात्र से मेरे बदन में कंपकंपी दौड़ गई। बात किसी और की थी, किसी और के लिए, पर मैं ऊपर से नीचे तक दहक उठी...'' यह दो वाक्य प्रेम की उस ज्वाला को प्रकट करते हैं, जिसकी आँच में मनोभावों की तमाम बर्फ पिघल जाती है। किंतु जया की

यह सहज अनुभूति शीघ्र ही एक आंतरिक बियाबान में बदल जाती है। एक रात रिश्तेदार के घर, 'अंकल' द्वारा उसके शरीर को छूने की कुत्सित चेष्टा स्त्री जीवन की उस त्रासदी को उजागर करती है जो समाज में प्रायः अनदेखी रह जाती है। लेखिका इस घटना को बगैर किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत करती हैं, जिससे पाठक को घटना का श्भोगा हुआ यथार्थश सीधे-सीधे स्पर्श करता है- 'जागी तो लगा, कोई मेरे बदन का माप ले रहा है। लगा जैसे मैं दरजी की दुकान पर हूँ, लेकिन यह कैसा माप...?' यह प्रसंग न केवल स्त्री की असहायता का दस्तावेज है, बल्कि उस समाज की भी पोल खोलता है, जहाँ अपनों द्वारा ही स्त्रियों की गरिमा पर चोट की जाती है। जया उस पल से पुरुष जाति से घृणा करने लगती है और सोचती है- 'शायद अब मैं प्यार के काबिल नहीं रही, या शायद मर्द ही प्यार के काबिल नहीं होते।'

हॉस्टल की स्वतंत्रता जया को प्रेम की पुनः अनुभूति कराती है। गिनेश, मॉरीशस निवासी, दिल्ली में मेडिकल की पढ़ाई कर रहा एक युवक, उसके जीवन में प्रवेश करता है। गिनेश के साथ प्रेम उसे फिर एक बार जीने की वजह देता है। विवाह के पश्चात् जया का जीवन दिल्ली और मॉरीशस के बीच फैले दैनिक संघर्षों में बंट जाता है। अब वह एक गृहिणी है- रसोई और आँगन के सीमित दायरे में सिमटी हुई। वहीं गिनेश एक बेहतर डॉक्टर बनने की दौड़ में लिप्त है। लेखिका यहाँ स्त्री-मन के उस सूक्ष्म मनोविज्ञान को टटोलती हैं जहाँ प्रेम मात्र एक भावना नहीं, बल्कि जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है- 'जब तक मैं खुश थी, मुझे किसी की याद नहीं आई। अब जब मन रुलाहट से भरा है, तो सब मेरे सामने आ खड़े हुए हैं।' यह वाक्य उस स्त्री के अंतर्मन की करुण पुकार है जो अपने अस्तित्व को केवल एक भूमिका में नहीं, संपूर्णता में जीना चाहती है।

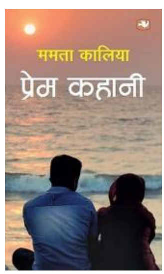

संस्करणः 2019
मूल्यः 146/-
पेंगुइन बुक्स इंडिया

उपन्यास की विशेषता यही है कि यह प्रेम को किसी रोमानी आभा से आवेष्टित नहीं करता, बल्कि जीवन के कठोर यथार्थ के बीच उसकी वास्तविक भूमिका को उद्घाटित करता है। प्रेम, यहाँ कोई स्वप्निल परिकल्पना नहीं, बल्कि संघर्षों में संबल देने वाली एक अन्तःप्रेरणा है। 'प्रेम कहानी' अप्रवासी भारतीयों की मानसिक संरचना, देश और संस्कृति के प्रति उनके भावनात्मक संबंधों,

चिकित्सा-जगत की विकृतियों और समाज में व्याप्त वर्गभेद की सजीव अभिव्यक्ति भी है। यह उपन्यास पाठकों को यह सोचने पर विवश करता है कि क्या आज का समाज स्त्री को उसके जीवन के महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने की स्वतंत्रता देता है? क्या प्रेम आज भी उस आदर्श की खोज में है, जो जीवन को पूर्णता प्रदान कर सके?

–सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राम चरित्र सिंह महाविद्यालय मंझौल, बेगूसराय

कृति–चर्चा

कहानियों में बुना गाँव का सौंदर्य और संघर्ष

• सोनल मंजू श्री ओमर

'कपास' एक मार्मिक और प्रभावशाली कहानी संग्रह है, जिसमें ग्रामीण जीवन की सच्चाई, संघर्ष और मानवीय भावनाओं को बारीकी से उकेरा गया है। कहानियाँ आंचलिक परिवेश में गढ़ी हुई हैं, जो आज के तेज शहरीकरण के युग में भी गाँव की सरलता, सामाजिक संवेदनशीलता और मानवीय मूल्यों को जीवंत बनाकर प्रस्तुत करती हैं। लेखक की भाषा सहज, स्पष्ट और सौम्य है, पर भावों के चित्रण में अत्यंत सूक्ष्मता और गहराई है। प्रत्येक कथा अपने आप में एक पाठ और जीवन का संदेश समेटे हुए है- चाहे वह संघर्ष हो, नैतिक द्वंद्व, मानवीय आत्मीयता या सामाजिक आलोचना।

हाल ही में मुझे कुबेर दत्त कौशिक की कहानियों का संग्रह 'कपास' पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। यह संग्रह दस कहानियों का संकलन है, जिनकी पृष्ठभूमि प्रमुखतः आंचलिक और ग्रामीण परिवेश में रची-बसी है। डॉ. कौशिक की कहानियाँ आज के तीव्र शहरीकरण के युग में भी गाँव की निर्मल, सरल और भावुक दुनिया की जीवंत झलक प्रस्तुत करती हैं- जहाँ जीवन की हर अनुभूति, हर संघर्ष और हर खुशी प्राकृतिक और वास्तविक रूप में हमारे समक्ष प्रकट होती है। इस संग्रह की शीर्षक कथा 'कपास' है, जिसमें लेखक ने एक किसान परिवार के जीवन संघर्ष को बड़े मार्मिक और सूक्ष्म तरीके से चित्रित किया है। कथा में कपास की फसल की रोपाई से लेकर गाँव में सर्दी के मौसम में ओढ़े जाने वाले मोटे सूत के वस्त्र 'खेस' के निर्माण तक की यात्रा को बारीकी से उजागर किया गया है। यह कहानी न केवल किसान के परिश्रम और समर्पण की दास्तान कहती है, बल्कि गाँव के जीवन के विविध पक्षों को भी बेहद संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है।

'पश्चाताप' शीर्षक कहानी नैतिक द्वंद्व की जटिलता को उकेरती है। कहानी के पात्र डॉ. श्रीकांत, जो एक लाइलाज रोगी की मुक्ति के लिए प्रयासरत हैं, और डॉ. मनोज मिश्रा, जो इसे हत्या और पाप मानते हैं, के बीच चल रहे संवाद से मानवीय अंतर्द्वंद्व की गहराई महसूस होती है। श्रीकांत की वह कथा, जिसमें एक युवक के पश्चाताप का भावानुभव प्रस्तुत है, इस बात का दार्शनिक संदेश देती है कि पश्चाताप स्वयं एक औषधि है, जो पाप के रोगों को समाप्त कर देती है। इस प्रकार यह कहानी लेखक के गूढ़ दार्शनिक दृष्टिकोण की परिचायक है। 'परछाइयाँ' एक भूले-बिछड़े साथी से वर्षों बाद हुई पुनर्मिलन की मार्मिक कथा है। यहाँ सत्तर वर्षीय दुर्गी की मातूराम फकीर से भेंट के माध्यम से अपने पूर्वकाल और परिचितों की स्मृतियाँ ताजा होती हैं। मातूराम द्वारा दुर्गी को उसके पुराने साथी सुबोध से मिलवाने की प्रक्रिया नाटकीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बेहद प्रभावशाली है। दोनों की पहचान का क्षण कथा का उत्कर्ष है, जो पाठक के हृदय को गहराई तक छू जाता है।

'अर्थी' की केंद्रीय भूमिका निभाने वाला बिरजपाल गाँव का इकलौता अर्थी बांधने वाला व्यक्ति है, जो इस कर्म को पुण्य का कार्य मानता है और इसे किसी आर्थिक मूल्य से ऊपर रखता है। डेंगू के प्रकोप में भी वह अपने परिवार से पहले दूसरों की सेवा करता है। उसकी मृत्यु पर कहानी यह प्रश्न उठाती है कि अब उसकी अर्थी कौन बांधेगा? यह कथा मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक जिम्मेदारी और परंपराओं पर कटाक्ष करते हुए गहरे मर्मस्पर्शी रूप में सामने आती है। 'मास्क' गाँव के उन मेहनतकश परिवारों की कहानी है, जो लॉकडाउन के दौरान भी अपने रोजगार हेतु घरों से निकलते हैं। पुलिस के कड़े निर्देशों के बावजूद उनकी लगन और संघर्ष यह दर्शाते हैं कि कोरोना जैसी महामारी भी ऐसे दृढ़ निश्चयी लोगों को डिगा नहीं पाती। 'भिखारी' एक रहस्यमय और अधूरी सी कहानी प्रतीत होती है, जिसका केंद्र बिंदु सूर्यकांत है, जो किसी महिला की खोज में गाँव-गाँव भटकता है। उसकी दीन-दशा भिखारी जैसी लगती है, पर कथा के अंत तक यह रहस्य बना रहता

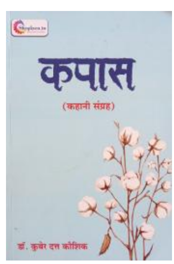

संस्करणः 2023
मूल्यः 489/-
शॉपिजन, अहमदाबाद

है कि वह कौन है, किस महिला को क्यों खोज रहा है। 'अतिथि' में लेखक ने संस्कारी और त्यागी समाज के प्रतिनिधि नरेंद्र के घर आए एक अनपेक्षित अतिथि अशोक त्यागी के प्रति आतिथ्य और सांस्कृतिक मूल्यों को बड़े सुंदर ढंग से चित्रित किया है। इस कहानी में गांधीवादी विचारधारा की झलक मिलती है, जो सिखाती है कि दूसरों के कृत्यों से प्रेरित होकर भी हमें अपने संस्कार और आदर्श नहीं छोड़ने चाहिए। 'मदिरा' एक ग्रामीण दंपत्ति की कथा है, जिसमें राजपाल शराब का आदी है। उसकी पत्नी किरणो उसकी शराब पीने की आदत को समझने के बाद एक नई रणनीति अपनाती है- अपने हाथों से शराब खरीदकर उसे घर पर ही पीने देती है, ताकि उसे सामाजिक कलंक से बचाया जा सके। अंततः राजपाल अपने संकल्प से शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा करता है। 'मुआवजा' में दो भाइयों, बलजीत और राजबीर, की कहानी है जो अपनी जमीन के बदले सरकार से मुआवजा प्राप्त कर वैभव और विलासिता में डूब जाते हैं, और अंततः अपनी संपत्ति खो बैठते हैं। यह कथा धन के विवेकपूर्ण प्रबंधन और विलासिता से बचने की सुस्पष्ट सीख देती है। संग्रह की अंतिम कहानी 'सिला' में पंडित जगन्नाथ कौशिक की उदारता का चित्रण है, जो कटाई के बाद खेत में गिरी टूटे हुए गेहूँ की बालियों को सिला समझकर चुगने वाली महिलाओं को अधिकार प्रदान करते हैं तथा अपनी फसल से चार-चार बंडल उन्हें दान स्वरूप देते हैं। यह कथा आदर्श मालिक और दातृत्व की श्रेष्ठता को उजागर करती है।

इस संग्रह की सभी कहानियाँ न केवल विषय-वस्तु की दृष्टि से समृद्ध और विविध हैं, बल्कि लेखन की शैली भी अत्यंत सूक्ष्म, संवेदनशील और प्रभावशाली है। लेखक की कथा-कथन कला में प्रत्येक परिस्थिति, पात्र के हाव-भाव तथा मनोभावों का जिस बारीकी से चित्रण हुआ है, वह प्रशंसनीय और काबिल-ए-तारीफ है। ये कहानियाँ पढ़ने वाले को जीवन की अनेक जटिलताओं और मानवीय मूल्यों की गहरी समझ प्रदान करती हैं।

-202 बी विंग, श्रीजी अपार्टमेंट, शांति नगर, रामापीर चौकड़ी, राजकोट, गुजरात - 360007

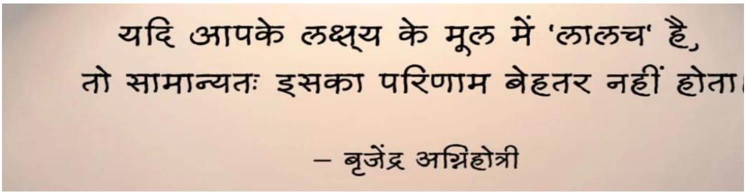

कृति–चर्चा

मध्यवर्गीय मन का आत्मवृत्तांत

• कांति शुक्ला

‘खूबसूरत मोड़’ राम नगीना मौर्य का सशक्त कहानी-संग्रह है, जो सामान्य जीवन स्थितियों में छिपे असामान्य भावों, मानवीय द्वंद्वों और सामाजिक विडंबनाओं को संवेदनशीलता व सूक्ष्मता से उजागर करता है। भाषा सरल, शैली प्रवाहपूर्ण और दृष्टिकोण विचारोत्तेजक है। यह संग्रह समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में एक उल्लेखनीय योगदान है।

प्रख्यात साहित्यकार राम नगीना मौर्य द्वारा प्रणीत कथा-संग्रह ‘खूबसूरत मोड़’, समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में एक विशिष्ट और मूल्यवान योगदान है। यह कृति न केवल जीवन की बहिर्मुखी क्रियाओं की बहुविधता को, अपितु उसके अंतरंग मनोजगत की सूक्ष्म वृत्तियों को भी अत्यंत सहजता और सौंदर्यबोध के साथ उजागर करती है। यह संग्रह प्रकृति, परिवेश और सामाजिक यथार्थ में निहित सूक्ष्म सत्यों को उनके मूल सौंदर्य और प्रांजलता में उद्घाटित करने का एक मौलिक बौद्धिक प्रयास है- जहां सुंदर और श्रेष्ठ को बचाए रखने की सर्जनात्मक चिंता प्रकट होती है। ‘खूबसूरत मोड़’ संग्रह की कहानियाँ विविधवर्णी जीवनानुभवों से सम्पन्न हैं, जो अपने आसपास के परिवेश, पात्रों की जीवन-शैली और उनके विशिष्ट व्यक्तित्वों को गहन संवेदनशीलता से चित्रित करती हैं। लेखक ने जिन प्रसंगों को आधार बनाकर कथा की रचना की है, वे न केवल तत्कालीन सामाजिक संरचना के प्रतिबिंब हैं, अपितु मानवीय चेतना के जटिल अंतःसंगठन को भी उजागर करते हैं। यह संग्रह मात्र कहानियों का समुच्चय नहीं, अपितु वह चिंतनशील साहित्यिक संवाद है जो जीवन-यथार्थ और अस्तित्व-बोध की जटिलताओं को संवेदनात्मक धरातल पर बौद्धिक आभा के साथ रूपायित करता है। इसमें संग्रहीत दस कहानियाँ विषय वैविध्य, अनुभूतिजन्य कथ्य, जीवन-मूल्यों के संस्कार, अनुभवों के अनुशीलन और परिवेश के प्रति गहन सजग दृष्टि से समृद्ध हैं। लेखक ने जिस सूक्ष्मता से जीवन-बोध का अनुभव तथा विचार की पक्षधरता को साहित्य में रूपांतरित किया है, वह अत्यंत दुष्कर कार्य है। कहानियों

के माध्यम से मानवीय अनुभूतियों की ईमानदार प्रस्तुति लेखक की विचारशीलता और सामाजिक प्रतिबद्धता को प्रमाणित करती है। 'अच्छे को अच्छे रूप में समझा देना' वस्तुतः बड़ा कठिन कार्य होता है, परन्तु लेखक उस अरूप को भी रूप दे पाने में समर्थ है।

भारतीय समाज की संरचना और उसके विकास की प्रक्रिया में अंतर्निहित विषमताएँ और विसंगतियाँ, जो एक ओर सामाजिक उत्तरदायित्व, साहस और संघर्ष का बीजारोपण करती हैं, वहीं दूसरी ओर चेतना बनकर शोषण, दमन और भय के विरुद्ध प्रतिरोध रचती हैं- ये कथाएं इन्हीं बुनियादी द्वंद्वों को रूपाकार देती हैं। 'खूबसूरत मोड़' संग्रह की शीर्षक कहानी- पूर्व परिचितों के अनायास मिलन की कहानी है, जिसमें कथा-नायक, एक सूक्ष्म अंतराल के पश्चात नायिका से मिलने जाता है। परन्तु इस भेंट में उपेक्षा, तटस्थता और छिपे हुए सत्य के बीच उत्पन्न एक भावशून्य संवाद, उसे आत्मग्लानि और मानसिक क्षोभ से भर देता है। अंततः वह इस आकस्मिक भेंट को एक 'खूबसूरत मोड़' का नाम देकर स्वयं को संतुष्ट करने का प्रयास करता है। इस कथा में नायक के अंतः और बाह्य मनोविज्ञान का विश्लेषण बड़ी आत्मीयता से किया गया है। 'शास्त्रीय संगीत'- नवदंपत्ति के माता-पिता बनने के उपरांत उत्पन्न व्यवहारिक समस्याओं और उनके मनोरंजक समाधानों को लेकर रची गई कहानी है, जो साधारण जीवन प्रसंगों को असाधारण सौंदर्य और रोचकता प्रदान करती है। 'सरनेम'- एक त्रुटिपूर्ण समाचार-विवरण के कारण नायक के भीतर उपजे मानसिक द्वंद्व का गहन चित्रण है, जिसमें विचारों की टकराहट और अस्तित्व की पहचान की जटिलता प्रभावी रूप में उभरती है। 'खिड़की के उस पार'- कथानायक द्वारा अपनी बहन के घर प्रवास के दौरान खिड़की से झांकते हुए बाह्य जीवन की गतिविधियों का अवलोकन है, जो हमारे समय की शहरी भीड़ और उसके भीतर छिपे असंतोष को चित्रित करता है। 'गुरुमंत्र'- एक सेवानिवृत्त सहकर्मी द्वारा कथाकार को दिए गए अनुभव-सिद्ध ज्ञान का चमत्कारिक प्रभाव बताती कथा है, जो इस यथार्थ को उद्घाटित करती है कि सत्य और सदाचार

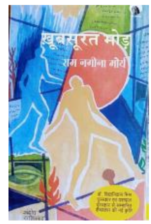

संस्करणः 2023
मूल्यः 225/-
रश्मि प्रकाशन, लखनऊ

आज के औपचारिक संसार में किस प्रकार उपेक्षित होते जा रहे हैं। 'आदर्श शहरी'- अपराध के अंधेरे जीवन से लौटकर एक आदर्श नागरिक बनने की इच्छा रखने वाले युवक की कथा है, जो अपने पुराने साथियों के अत्याचार से विवश होकर पुनः उसी नारकीय जीवन में लौटने को बाध्य हो जाता है। 'सौदा'- वरिष्ठ और अनुभवी व्यक्ति द्वारा युवा पीढ़ी को जीवन की राह पर दिशा देने की मार्मिक कथा है, जिसमें सद् और असद् के विवेक का संतुलन जीवन के आंतरिक और बाह्य आचरण के सामंजस्य पर बल देता है। 'छुट्टी का एक दिन'- वैयक्तिक जीवन की व्यस्तताओं के मध्य एक अवकाश का दिन कैसे खंडित अनुभवों का समुच्चय बन जाता है, इसका अत्यंत सजीव चित्रण है। 'हस्बेमामूल'- ट्रेन यात्रा के एक रोचक अनुभव पर आधारित कथा है, जिसमें यात्रा जीवन के प्रतीकों, अनुभवों और अनपेक्षित संवादों का माध्यम बनती है। 'फैशन के इस नाजुक दौर में'- यह मनोवैज्ञानिक कथा इस सत्य को प्रतिपादित करती है कि आज के औपचारिक सामाजिक संबंधों में विश्वास की कमी किस प्रकार संवाद की पारदर्शिता को नष्ट कर देती है।

'खूबसूरत मोड़' की कहानियाँ भावात्मक समरसता और बौद्धिक विमर्श का सुन्दर समन्वय हैं। कथ्य की सूक्ष्मता, भाषा की सहजता, वर्णन की सजीवता तथा शैली की ओजस्विता पाठक को आरंभ से अंत तक बाँधे रखती है। लेखक की भाषा-शैली प्रांजल, अभिव्यक्तिपरक और अर्थगर्भित है, जो गहन भावों को भी सरलता से संप्रेषित करती है। कहानियों में जहाँ एक ओर जीवन की विविध स्थितियाँ रूपायित होती हैं, वहीं लेखक की अंतर्दृष्टि उन तथ्यों को उजागर करती है जिन्हें हम सामान्यतः अनदेखा कर देते हैं। पात्रों का यथार्थ चित्रण, लोकभाषा का सजीव प्रयोग और सामाजिक चेतना का मार्मिक उन्नयन- इन कहानियों की विशेषता है। समग्रतः 'खूबसूरत मोड़' जीवन के विविध पक्षों, संघर्षों, असमंजसों और समाधान की संभावनाओं का जीवंत साहित्यिक दस्तावेज है। यह संग्रह राम नगीना मौर्य की प्रौढ़ दृष्टि, गहन अनुभूति और सूक्ष्म पर्यवेक्षण का दर्पण है। उनकी लेखनी की परिपक्वता कथाओं को विशिष्ट संवेदनशीलता, सामाजिकता और कलात्मकता प्रदान करती है। कहानी संग्रह न केवल वर्तमान समय की विडंबनाओं से संवाद करता है, अपितु जीवन-मूल्यों की पुनर्स्थापना का सजग प्रयास भी करता है।

-एम. आई. जी. 35, सेक्टर- डी, अयोध्यानगर, भोपाल 462041

कृति–चर्चा

हिंदी भाषा का तकनीकी भविष्य

• दीनदयाल

‘हिंदी भाषा और तकनीक’ हिंदी के डिजिटल युग में विकास, चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाओं पर केंद्रित है। इसमें हिंदी की टाइपिंग, सोशल मीडिया, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डिजिटल प्रकाशन जैसे तकनीकी पहलुओं का सरल और व्यावहारिक विश्लेषण है। यह पुस्तक हिंदी को आधुनिक तकनीक के साथ जोड़कर वैश्विक स्तर पर सशक्त बनाने का मार्ग दिखाती है।

शैलेश शुक्ला की पुस्तक ‘हिंदी भाषा और तकनीक’ एक अद्वितीय एवं दूरदर्शी कृति है, जो न केवल हिंदी भाषा के तकनीकी विकास की वर्तमान स्थिति और उसमें विद्यमान चुनौतियों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है, बल्कि इसके उज्ज्वल भविष्य की स्पष्ट रूपरेखा भी सहजता से हमारे सम्मुख रखती है। यह पुस्तक आधुनिक युग में हिंदी और तकनीक के मध्य निर्मित सेतु के समान है, जो परंपरा एवं नवाचार को एक सूत्र में पिरोकर हिंदी भाषा के वैश्विक प्रसार की दिशा में पथ प्रशस्त करती है। इस कृति की सबसे पहली विशेषता इसकी विषयगत व्यापकता है। डॉ. शुक्ला ने हिंदी के डिजिटल युग में प्रवेश से लेकर सोशल मीडिया, ई–कॉमर्स, ब्लॉगिंग, डिजिटल प्रकाशन, अनुवाद तकनीक, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, वर्चुअल रियलिटी तथा सर्च इंजन ऑप्टिमाइजेशन तक के लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण पहलू पर सूक्ष्म, शोधपरक और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक मात्र सैद्धांतिक विवेचना तक सीमित न होकर लेखक के चौदह वर्षों के अनुभव और वास्तविक केस स्टडीज से संजोई हुई एक प्रायोगिक मार्गदर्शिका के रूप में भी प्रतिष्ठित है। दूसरी विशिष्टता इसकी सहज, प्रवाहपूर्ण तथा आकर्षक भाषा शैली है। जहाँ तकनीकी विषयों पर लिखित ग्रंथों में जटिल शब्दावली और गहन वाक्य संरचनाएँ पाठक के लिए बोझिल हो जाती हैं, वहीं डॉ. शुक्ला ने जटिलतम तकनीकी अवधारणाओं को भी इस प्रकार सरल एवं स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है कि तकनीकी पृष्ठभूमि से अनभिज्ञ पाठक भी सहजता से उन्हें आत्मसात कर सकें। उनकी भाषा में

पत्रकारिता की व्यावहारिकता, शिक्षण की स्पष्टता और कवि की संवेदनशीलता का समन्वय स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। लेखक का स्वयं का अनुभव तथा संघर्षमय यात्रा इस पुस्तक को और अधिक प्रामाणिकता एवं प्रेरकता प्रदान करती है। 'अपनी बात' नामक अनुभाग में उन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है कि कैसे उन्होंने अपने स्कूली जीवन से लेकर पत्रकारिता, शिक्षण, शोध और राजभाषा अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए हिंदी के डिजिटल लेखन, कंटेंट निर्माण, टाइपिंग, फॉन्ट विकास, अहृडियो-वीडियो सम्पादन और सोशल मीडिया प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में निरंतर नव कौशल अर्जित कर उन्हें व्यवहार में उतारा। यह आत्मकथात्मक शैली पाठक को यह अनुभव कराती है कि यह ग्रंथ किसी दूरस्थ सिद्धांतकार की रचना नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति की उपज है जिसने मैदान में उतरकर अनेक चुनौतियों का सामना किया और समाधान निकाले।

कृति में हिंदी भाषा के डिजिटलीकरण का ऐतिहासिक संदर्भ भी अत्यंत सूचनाप्रद एवं रोचक है। लेखक ने टाइपराइटर युग से लेकर यूनिकोड आधारित टाइपिंग तक, रेमिंगटन और इनस्क्रिप्ट की-बोर्ड से लेकर फोनेटिक लेआउट तक, तथा कृतिदेव, चाणक्य जैसे पुराने फॉन्ट्स से आधुनिक यूनिकोड फॉन्ट्स तक के क्रमबद्ध विकास का विस्तृत दस्तावेज प्रस्तुत किया है, जो हिंदी टाइपिंग के विद्यार्थियों और प्रशिक्षकों के लिए अमूल्य संदर्भ सामग्री सिद्ध होता है। पुस्तक में सोशल मीडिया पर हिंदी के प्रभाव और संभावनाओं को विशेष महत्व दिया गया है। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यूट्यूब जैसे मंचों पर हिंदी की उपस्थिति, डिजिटल मार्केटिंग, तथा ग्रामीण भारत में सामाजिक जागरूकता के लिए सोशल मीडिया के प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण करते हुए लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि डिजिटल युग में हिंदी की पहुंच किसी भी अन्य भाषा से कम नहीं है। एक और प्रशंसनीय पक्ष पुस्तक का आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और हिंदी पर समर्पित व्यापक अध्याय है, जिसमें हिंदी के लिए प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण, मशीन लर्निंग आधारित अनुप्रयोगों, रोबोटिक्स और स्वचालन में हिंदी की संभावनाओं तथा एआई के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह अनुभाग तकनीकी शोधकर्ताओं, स्टार्टअप उद्यमियों एवं भाषा प्रौद्योगिकी के विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

डॉ. शैलेश शुक्ला का यह यत्न हिंदी भाषा के तकनीकी सशक्तिकरण में एक मील का पत्थर साबित होता है। यह पुस्तक केवल तकनीकी मार्गदर्शिका

ही नहीं, अपितु एक प्रेरक स्रोत भी है, जो संदेश देती है कि यदि हम अपनी मातृभाषा को आधुनिक तकनीक के साथ आत्मसात करें, तो वह किसी भी वैश्विक भाषा के समकक्ष खड़ी हो सकती है। 'हिंदी भाषा और तकनीक' केवल एक पुस्तक नहीं, अपितु एक दृष्टि-पत्र है- ऐसा दस्तावेज जो आने वाले दशकों में हिंदी के डिजिटल भविष्य की रूपरेखा निर्धारण में सहायक सिद्ध होगा। इसकी प्रासंगिकता न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए, बल्कि भविष्य के शोधकर्ताओं, शिक्षकों, विद्यार्थियों और राजभाषा अधिकारियों के लिए भी स्थायी बनी रहेगी, जो हिंदी को तकनीकी माध्यम से वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

संस्करणः 2024
मूल्यः 251/-
न्यू मीडिया सृजन संसार ग्लोबल फाउंडेशन, लखनऊ

अध्यायवार रचना और विषय-सामग्री की गहनता इस पुस्तक की विशिष्टता है। प्रत्येक अध्याय एक स्वतंत्र शोध-पत्र की भांति है, जिसमें सैद्धांतिक विश्लेषण के साथ-साथ व्यावहारिक समाधान, उदाहरण और भविष्य की संभावनाएँ समाहित हैं। प्रथम अध्याय 'हिंदी भाषा का डिजिटल युग में प्रवेश' में लेखक ने इंटरनेट, सोशल मीडिया, ई-कॉमर्स, ब्लॉगिंग, डिजिटल शिक्षा एवं पत्रकारिता में हिंदी की भूमिका का बहुआयामी अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि हिंदी का डिजिटलरण केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्रांति है, जो करोड़ों भारतीयों को ज्ञान, सूचना एवं अवसरों की नई दुनिया से जोड़ रहा है। द्वितीय अध्याय 'हिंदी टाइपिंग और फॉन्ट्स' हिंदी कंप्यूटिंग के इतिहास एवं तकनीकी विकास का दस्तावेजीकरण करता है। टाइपराइटर युग से यूनिकोड तक की यात्रा, विभिन्न की-बोर्ड लेआउट्स का तुलनात्मक विश्लेषण, फॉन्ट असंगति और तकनीकी बाधाओं का उल्लेख इस अध्याय को हिंदी टाइपिंग के लिए अनिवार्य पठन बनाता है। तृतीय अध्याय 'हिंदी भाषा और सोशल मीडिया' समकालीन युग की प्रासंगिकता से परिपूर्ण है। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, व्हाट्सऐप जैसे प्लेटफार्मों पर हिंदी के प्रयोग, प्रभाव और सीमाओं का विश्लेषण, सोशल मीडिया पर हिंदी की सामाजिक-राजनीतिक भूमिका तथा ग्रामीण भारत में इसकी बढ़ती उपस्थिति इस खंड को अत्यंत समृद्ध बनाते हैं। इसके पश्चात हिंदी के लिए सॉफ्टवेयर एवं एप्लिकेशन, अनुवाद एवं

भाषांतरण जैसे विषयों पर अध्याय हैं, जो तकनीकी आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक हैं। अनुवाद में सांस्कृतिक संदर्भों, मुहावरों और भावानुकूल शब्द चयन की जटिलताओं पर भी विस्तृत विमर्श प्रस्तुत है।

डिजिटल प्रकाशन एवं शिक्षण के तकनीकी साधनों पर विशेष अध्याय शिक्षकों, प्रकाशकों और सामग्री निर्माताओं के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। डिजिटल पुस्तकें, अहनलाइन पाठ्यक्रम, वर्चुअल क्लासरूम और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म पर हिंदी की भूमिका की स्पष्ट झलक इस पुस्तक की एक और विशिष्टता है। पुस्तक के अंतिम अध्यायों में भविष्य की तकनीकी प्रवृत्तियों जैसे वर्चुअल रियलिटी, गेमिफिकेशन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के संदर्भ में हिंदी की संभावनाओं और चुनौतियों पर गंभीर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि तकनीक के इन क्षेत्रों में हिंदी की प्रगति के लिए अनुसंधान, प्रशिक्षण और उद्योग-शैक्षणिक सहयोग आवश्यक है। संक्षेप में, 'हिंदी भाषा और तकनीक' दृष्टि, अनुभव और मार्गदर्शन का अद्वितीय समागम है। यह न केवल वर्तमान आवश्यकताओं का उत्तर देती है, बल्कि हिंदी के डिजिटल युग के भविष्य के लिए भी एक ठोस आधार प्रदान करती है। डॉ. शैलेश शुक्ला ने सिद्ध किया है कि यदि हिंदी तकनीक के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके, तो वह किसी भी वैश्विक भाषा के समकक्ष उत्कृष्ट स्थान पा सकती है। यह पुस्तक न केवल भाषाई जगत के लिए, बल्कि शिक्षा, मीडिया, प्रशासन, उद्योग और समाज के समस्त क्षेत्रों में हिंदी के तकनीकी सशक्तिकरण की दिशा में रुचि रखने वालों के लिए अनिवार्य पठन है और निश्चय ही आने वाले वर्षों में हिंदी के डिजिटल भविष्य के निर्माण में एक मील का पत्थर सिद्ध होगी।

-सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, जानकी देवी मेमोरियल कहलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

जब हम अपनी भूल पर लज्जित होते हैं, तो यथार्थ बात अपने आप ही मुंह से निकल पड़ती है।

-प्रेमचंद

कृति–चर्चा

विरोध और युगबोध की गजल

• ज़िआउर रहमान जाफ़री

हरेराम समीप हिंदी गजल के समकालीन प्रमुख शायर और आलोचक हैं जिन्होंने दुष्यंत कुमार के बाद इस विधा को नई दिशा दी। उनकी गजलें प्रेम से अधिक सामाजिक न्याय, विरोध और युगबोध की गूंज हैं। वे गजल को केवल शिल्प न मानकर जन-जन की आवाज समझते हैं। उनकी रचनाएँ आम आदमी की भाषा में लिखी गई हैं और वर्तमान समाज के यथार्थ को बखूबी प्रतिबिंबित करती हैं।

दुष्यंत कुमार के बाद हिंदी गजल की परंपरा को सहजता और समर्पण के साथ आगे बढ़ाने वालों में पूरे हिंदी भाषी प्रदेश से चुनिंदा शायरों में हरेराम समीप का नाम अग्रणी होगा। समकालीन हिंदी साहित्य में वह एकमात्र ऐसे शायर हैं जो गजल को केवल एक विधा या शैली नहीं, बल्कि अपना जीवनदर्शन मानते हैं। गजल की रचना, समीक्षा, आलोचना और यहां तक कि संवादों में भी गजल की उपस्थिति उनके प्रति गजल के प्रति गाढ़े प्रेम और अटूट निष्ठा का प्रमाण है। शायर के साथ-साथ एक निष्ठावान आलोचक के रूप में भी हरेराम समीप ने हिंदी गजल को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'समकालीन हिंदी गजलः एक अध्ययन' नामक उनके चार-पाँच खंडों में प्रकाशित ग्रंथ उनके अथक परिश्रम और अनवरत साधना का जीवंत प्रमाण है। यदि हिंदी गजल आज साहित्य के मानचित्र पर एक विशिष्ट स्थान रखती है, तो उसमें हरेराम समीप की आलोचनात्मक दृष्टि का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन की 'समकाल की आवाज' शृंखला के अंतर्गत प्रकाशित यह संकलन- 'हरेराम समीपः चयनित गजलें' -प्रकाशक के लिए भी चुनौतियों से भरा कार्य रहा होगा। एक शायर की अनगिनत रचनाओं में से कुछ चुनिंदा गजलें चुनना, बिलकुल उसी प्रकार कठिन है जैसे अपने अनेक संतान में से कुछ को चुन लेना। समीप की प्रत्येक गजल शिद्दत से लिखी गई है, प्रत्येक शे'र में उनकी गहन मेहनत झलकती है। वे मात्र काफिया और रेडिफ को फिट

करने वाले शायर नहीं हैं, बल्कि तब तक शे'र को मुकम्मल नहीं मानते जब तक स्वयं उससे संतुष्ट न हों। उनके पास अनुभव का विशाल भंडार है, जो उनकी रचनाओं में निर्मलता से प्रकट होता है। हिंदी गजल, हरेराम समीप के काव्य में, प्रेम-भावनाओं का सरल अभिव्यंजन नहीं है, बल्कि उसमें विद्रोह, विरोध, क्रोध, युग-बोध और बहिष्कार के तत्व समाहित हैं। इसलिए हिंदी के शायर सल्तनत के पैर नहीं चाटते, बल्कि उस अत्याचारी व्यवस्था को चुनौती देते हुए कुंभनदास की तरह आगे बढ़ते हैं। हरेराम समीप की गजल इसी शैली की परिचायक है, जिसकी वजह से हिंदी गजल जानी, पहचानी और स्वीकार्य हुई है। जब दुष्यंत ने कहा था कि 'वो कर रहे हैं इश्क पे पसंदीदा गुफ्तगू', तो जाहिर है, वह अपनी शायरी के जरिए सत्ता, जमींदारी प्रथा और अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करना चाहते थे। हरेराम समीप की गजलें इसी दृष्टि की परिचायक हैं, जो जाति-पात, धर्म, और नस्ल की दीवारें तोड़कर एकता का संदेश देती हैं। इस संकलन के कुछ शे'र इस बात के जीवंत उदाहरण हैं-

'समय के जंग खाए पेंच दाँतो से नहीं खुलते,
समझ भी लो मेरे यारों बगावत के सही मानी।' (पृष्ठ 09)

'सिर्फ कहने के लिए जम्हूरियत है दोस्तों,
आज भी इस मुल्क को जिल्ले इलाही चाहिए।' (पृष्ठ 16)

मुक्तिबोध, धूमिल और नागार्जुन जैसे महाकाव्य रचनाकारों ने जो काम मिलकर किया, हरेराम समीप अकेले ही अपनी शायरी में वह समर्पित करते हैं। मुक्तिबोध जहाँ प्रश्न करते हैं- 'तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है यार?', समीप उसी राजनीति के परत-दर-परत रहस्य खोल देते हैं। उनकी यह सामर्थ्य निम्नलिखित शे'रों में स्पष्ट होती है-

'ये रहे या वो रहे अंतर नहीं है,
आज सच्चा कोई भी लीडर नहीं है।' (पृष्ठ 25)

'देखना फरमान यह जल्दी निकाला जाएगा,
जुर्म होते जिसने देखा मार डाला जाएगा।' (पृष्ठ 33)

शायरी अक्सर इशारों में बात करती है, पर समीप के प्रतीक कभी जटिल या अस्पष्ट नहीं होते। उनकी शायरी आम जन की है, जिसे 'फाइलुन' और 'मुफाइलुन' जैसे छंदों की कसौटी से मापने की बजाय, उसके दिल को छूने

की कसौटी से आंका जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हरेराम समीप की गजल शिल्प और उरूज से विमुख है, पर वे शिल्प की बलि कथ्य को नहीं देते। दुष्यंत कुमार की शायरी शिल्प की तुलना में कथ्य की वजह से अमर हुई है। उनकी अनुपस्थिति में 'धर्मयुग' पत्रिका ने अपने आवरण पर डूबता सूरज दर्शाया था। गजल तब मुकम्मल होती है जब उसमें संरचना के साथ अभिव्यंजना भी हो। परंतु हिंदी गजल में आज भी केवल छंद और मात्रा की गणना में इतना समय व्यतीत होता है कि उसकी गहराई की उपेक्षा हो जाती है। इसी कारण हिंदी गजल सीमित शायरों तक सीमित है, जिनमें कुछ आत्ममुग्ध और कुछ छन्दशास्त्र के औसत ज्ञान से ऊपर नहीं उठ पाए।

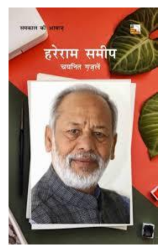

संस्करणः 2023
मूल्यः 200/-
न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

हिंदी गजल अपनी लोकप्रियता में अव्वल स्थान रखती है, क्योंकि यह आम जनता के दर्द और पीड़ा को शब्द देती है। इसके माध्यम से छन्द की वापसी हुई, और नई कविता की नीरसता व बोझिलता को कुछ हद तक कम किया गया। हरेराम समीप दोहे भी लिखते हैं। मैं मानता हूँ कि दोहा और शे'र के बीच 'कजन' जैसा रिश्ता है- दो अलग माताएं हैं, पर एक ही घर में पले-बढ़े हैं। इस रिश्ते को समझने के लिए उनकी चयनित गजलों के साथ-साथ 'चलो एक चिट्ठी लिखें', 'आँखें खोलो पार्थ' जैसे दोहा संग्रहों का अध्ययन आवश्यक है। 'दोहा-गजल' नाम की विधा भी विकसित हुई है, जिसका उदाहरण निदा फाजली और सरदार पंछी हैं। गजल की तुलना में दोहा कहीं अधिक कठोर और क्लिष्ट विधा है, क्योंकि गजल में मात्राओं का उतार-चढ़ाव संभव है, जबकि दोहे में ऐसा संभव नहीं। हरेराम समीप के पास अनुभवों का अथाह सागर है। उन्होंने गजल के लिए अपना कलेजा फाड़ा है और जिगर का खून बहाया है। इसलिए जब वे बाईपास सर्जरी के दौरान भी गजल की बात कर रहे होते हैं, उनकी बातों में मिठास और दृढ़ता झलकती है। उनकी भाषा इतनी सहज और पारदर्शी है कि किसी शेर को पढ़ने के लिए डिक्शनरी की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे हिंदी गजल को हिंदी का चादर पहना कर सीमित नहीं रखते। उन्हें इस बात की चिंता नहीं होती कि कौन-से शब्द तद्भव हैं या तत्सम, देशज हैं या विदेशी। जो भाषा आम लोगों की बोली है,

वही उनकी गजल की भाषा है। वर्तमान हिंदी गजलकारों में कई ऐसे हैं जो संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के चक्कर में गजल की मौलिकता को खो रहे हैं। वे कुंडली, छप्पय और सवैये जैसी छन्द-रचनाओं को नहीं समझ पाते। गजल किसी भी भाषा की हो, अपनी शर्तों पर जीवित रहने वाली विधा है। यह वह महबूब की भाषा है, जो मिठास को देखती है, जुबान को नहीं। गजल की माशूका कभी ढीला गाउन पसंद नहीं करतीय वह टाइट जीन्स में अपनी सुरक्षा पाती है। इस संकलन की कुछ चयनित गजलों में भाषा की खूबसूरती देखने योग्य है-

'टहल रहे हैं यहाँ देखिए तो डर कितने,
हमीं हैं आज हकीकत से बेखबर कितने।' (पृष्ठ 46)

'इन आलीशान मकानों में एक ही दुख है,
किसी को फिक्र नहीं है किसी के बारे में।' (पृष्ठ 55)

'मैं जानता हूँ मुझे ये दवा जरूरी है,
किराया घर कभी देना बहुत जरूरी है।' (पृष्ठ 59)

'एक मुफलिस का चौका मैंने देखा तब,
परिभाषा स्पष्ट हो गया शोषण की।' (पृष्ठ 77)

हरेराम समीप की रचना न केवल वर्तमान सामाजिक-राजनैतिक स्थिति का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है, बल्कि संघर्ष और मुकाबले की प्रेरणा भी देती है। वे केवल भयावह दृष्यों को प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि साहस बढ़ाने और मुकाबले के लिए तैयार भी करते हैं, जैसा कि इस शे'र में स्पष्ट है-

'उड़ोगे हौसले के साथ जब तुम,
तुम्हें ये आसमां छोटा लगेगा।' (पृष्ठ 85)

निश्चित ही, लगभग सौ गजलों का यह संग्रह न केवल हमें आज की गजलों से परिचित कराता है, बल्कि हिंदी गजल की विकसित होती परंपरा पर भी प्रकाश डालता है। हरेराम समीप आज उस मुकाम पर हैं, जहां से हिंदी गजल का मूल्यांकन संभव है। पुस्तक का आवरण और मुद्रण अत्यंत आकर्षक है। प्रकाशक ने उनकी सरलता और आर्थिक मंशा का सम्मान करते हुए इसे मात्र दो सौ रुपये में प्रकाशित किया है। यह पुस्तक हर उस पाठक के लिए अनिवार्य है, जो हिंदी गजल के असली स्वाद को महसूस करना चाहता है।

- स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,मिर्जा गालिब कहलेज गया, बिहार

कृति–चर्चा

वंचितों का वक्तव्य

• सुरेंद्र प्रजापति

शैलेंद्र चौहान की कविताएं भारतीय समाज के शोषित-वंचित वर्गों- किसान, मजदूर, स्त्रियों और बच्चों की पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता को अभिव्यक्त करती हैं। कवि की रचनाएं सामाजिक अन्याय, सत्ता के दमन और बाजारवादी अमानवीयता के खिलाफ जनचेतना की आवाज बनकर उभरती हैं। ये कविताएँ यथार्थ का चित्रण करते हुए प्रतिरोध और बदलाव की आकांक्षा को स्वर देती हैं।

शैलेन्द्र चौहान की कविताएँ जनवादी मूल्यों की ज्योति से प्रकाशित एक स्वतंत्र और निर्भीक स्वर हैं, जो शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध खड़ी होती हैं। उनकी कविताओं में जीवन की कटु यथार्थता अपनी समूची तीव्रता के साथ उभरती है- जिसे केवल पढ़ा नहीं, बल्कि जिया और भोगा भी जा सकता है। आज जब भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है, तब भी किसान, श्रमिक, वंचित, दलित और असहाय वर्ग शोषक-शासक वर्ग की स्वार्थपरक नीतियों, अन्याय और अत्याचार का दंश झेल रहे हैं। ऐसे कठिन समय में शैलेन्द्र चौहान की कविताएं न केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति हैं, अपितु जनचेतना के जागरण की हुंकार भी हैं। वे भू-स्वामियों की दबंगई, व्यवस्था की रंगदारी और सत्ता की अनैतिकता के विरुद्ध निर्भीकता से कलम उठाते हैं। जनकवि शील, उक्त संग्रह की भूमिका में लिखते हैं- ''वामपंथी राजनीति, शोषण, दोहन और उत्पीड़न से मुक्ति की आकांक्षा के साथ जनता के संघर्ष, प्रगति और विकास के स्वप्न को समृद्ध और सजीव बनाती हैं शैलेन्द्र चौहान की कविताएँ।''

संग्रह की पहली कविता 'संकल्प' की कुछ पंक्तियाँ पाठक को सीधे बाजार के क्रूर यथार्थ से साक्षात्कार कराती हैं- 'जब गट्टर की बोली लगेगी/हो सकता है लोग उसकी भी बोली लगाएं...' यह कविता बाजार की अमानवीय और अनैतिक प्रवृत्तियों से संवाद करती है। आज का समाज एक ऐसा भयावह बाजार बन चुका है जहाँ पहले वस्तुओं की नहीं, बल्कि स्त्री-शरीर के कोमल

अंगों की बोली लगती है। यह बाजार अब सत्ता का पर्याय बन चुका है- जो आम जन की विवशताओं का दोहन कर उसे अनवरत लूट रहा है। वह मजदूर, जो दिन-रात परिश्रम कर पुल, इमारतें, कारखाने बनाता है, स्वयं को एक बिस्तर और चौन की नींद से वंचित पाता है। उसका शरीर व्याधियों का घर बन चुका है, किंतु वह फिर भी निरंतर श्रम करता है। 'मेरे गाँव का आदमी' कविता में कवि ने इस असहाय श्रमिक की करुण गाथा को बड़ी संवेदनशीलता से रेखांकित किया है- 'मेरे गाँव का आदमी किसान है, मजदूर है/वह चिड़ियों सा फुदकता नहीं/पोस्टमैन का इंतजार नहीं करता...' यह केवल कवि के गाँव का चित्र नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत के ग्रामीण अंचलों का यथार्थ है। संग्रह की कविताएँ 1972 से 1982 के दशक की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करती हैं। यह वह समय था जब नक्सलवादी आंदोलन ने पूंजीवादी और सामंती दमन के विरुद्ध जनचेतना को स्वर दिया। शासक वर्ग ने इस चेतना को दबाने के लिए भयावह दमनचक्र चलाया, जिसकी व्यथा 'नासिक गोलीकांड पर' कविता में मुखर होती है- 'मांग रहे गन्ने की कीमत/ठांय-ठांय/भीड़ में दबती है चीखें...।' यह कविता सत्ता के उस नग्न रूप को उजागर करती है, जो जन की पीड़ा पर अपने हाथ रक्त से धोता है।

शैलेन्द्र जी की कविताओं में स्त्री-चरित्र भी अत्यंत स्वाभाविकता और मानवीयता के साथ चित्रित हुए हैं। 'चंद्रकांता' जैसी महरी- पति से पिटती, अपमान सहती- फिर भी व्यवस्था से प्रश्न करती है, गरीबी-अमीरी के फर्क को समाप्त करने की इच्छा रखती है। मलिन बस्तियों के बच्चे विषैले जल में खेलते हैं, नहाते हैं, पीते हैं, बीमार नहीं होते- वहाँ दूषित जल भी उनके आनंद और जीवन का एक अंग है- 'आलीशान इमारतों के नीचे ये बच्चे/अपना भविष्य खोज रहे हैं...' 'कविता का लड़का'- वह बालक है जो बचपन को जी नहीं पाता, बल्कि जीने की कीमत पर श्रम करता है। उसका गमछा केवल वस्त्र नहीं, बल्कि इस समाज की गंदगी का दर्पण है- 'मेरी कविता का लड़का/कम अक्ल, कम दिमाग लड़का/फटी कमीज, गमछा लपेटे...' शोषण का यह चक्र बदस्तूर जारी है। किसान आज भी ठाकुरों, पटवारियों के पाँवों तले रौंदा जा रहा है। कर्ज लेता है, चुका नहीं पाता। खेत बिकते हैं, सपने मरते हैं, बच्चे निकम्मे कहलाते हैं। 'जब तक जीना है, तब तक खटना है/यही तो जीवन है...' -शैलेन्द्र चौहान की कविता इस कठोर यथार्थ को संकोच या सजावटी भाषा के बिना

संस्करणः 1983
मूल्यः 200/-
दृष्टि प्रकाशन, जयपुर

चित्रित करती है। 'सभ्यता...संस्कृति' कविता वर्तमान भारतीय समाज की विसंगतियों पर तीखा प्रहार करती है। भारत जो विश्वगुरु बनने का स्वप्न देखता है, वहाँ की जनता आज भी जातिवाद, लिंगभेद, नस्लभेद की जकड़ में है। सत्ता के प्रतिनिधि अपनी विफलताओं को छिपाने के लिए आमजन का खून बहा रहे हैं। 'सोने की चिड़िया कहलाता था भारत/...क्या हो गया देश को?' -कवि की दृष्टि सिर्फ सामाजिक ही नहीं, पारिस्थितिक प्रश्नों की ओर भी जाती है। आज वनों, पशु-पक्षियों, वृक्षों- सबका अस्तित्व संकट में है, फिर भी लोग उत्सव मना रहे हैं। ष्बीतते हुए बसंतष की पंक्तियाँ मनुष्य की संवेदनहीनता को उजागर करती हैं- 'मैं भी अजीब भुलक्कड़ हूँ/भूल जाता हूँ बहुत सी बातें...' 'अस्मिता' कविता में एक गरीब माँ की पीड़ा और संघर्ष की आस्था में परिवर्तित होती छवि है। एक झोपड़ी में रहने वाली, ढिबरी बुझाने वाली माँ का हर बेटा ईसा मसीह हो जाता है- 'घास-फूस की झोपड़ी/ढिबरी बुझा दी/तुम्हारा हर बेटा/ईसा मसीह हुआ, माँ. ..!'

शैलेन्द्र चौहान की कविताओं में गाँवों की सूखती नदियाँ, पोखर, झुलसती मिट्टी, और रेगिस्तान बनते मनुष्य हैं- लेकिन इन सबके बीच भी एक अकंपित संवेदना, एक मौन प्रतिरोध जीवित है- 'सामने सूख रहा पोखर/उसमें ठहरा हुआ है पानी/जैसे मेरा गाँव...।' उनकी कविताएँ केवल कलात्मक कृतियाँ नहीं, बल्कि जन-आंदोलनों की दस्तावेज हैं। वे सामाजिक अन्याय पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं, हाशिए पर खड़े व्यक्ति को केंद्र में लाती हैं, और खामोश प्रतीत होने वाले जीवन में प्रतिरोध का स्वप्न भरती हैं। इस संग्रह में रोटी के लिए जूझते, व्यवस्था से टकराते, और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते पात्र एक वृहद फलक पर उपस्थित हैं। यह जनकवि का ऐसा उदात्त स्वर है, जो समय, समाज और सत्ता से आँख मिलाकर बात करता है- सत्य, संवेदना और साहस के साथ।

-ग्राम-असनी, पोस्ट-बलिया, थाना-गुरारू-824205 जिला-गया (बिहार)